स्कूल से मुक्ति
राहुल अल्वारिस

स्कूल से मुक्ति

लेखक: राहुल अल्वारिस

चित्र: एलेक्स फरनैन्डिस

हिंदी अनुवाद: श्रीमती स्वयंप्रभा भट्ट एवं अरविन्द गुप्ता

विषय सूची

पालकों के लिए दो शब्द

कुछ बच्चों को स्कूल अच्छा लगता है। अधिकांश को नहीं। ज्यादातर पालक इस बात से सहमत होंगे कि आज के स्कूल अधिकतर बच्चों को अच्छे नहीं लगते हैं। नापसंदगी के कारण बच्चे अक्सर स्कूल जाना नहीं चाहते हैं। वे पेट दर्द या अन्य किसी बीमारी का बहाना बनाते हैं। स्कूल से बच्चों की नफरत इस बात से भी जाहिर है कि सभी जगह बच्चे अपने शिक्षकों को 'उपनाम' देकर चिढ़ाते हैं। 'उपनाम' द्वारा वे टीचरों की खिल्ली और उनका मजाक उड़ाते हैं। अक्सर 'उपनाम' टीचर के व्यवहार अथवा उनके शरीर के किसी गुण पर आधारित होता है।

स्कूलों की एक और महत्वपूर्ण बात है - स्कूल सीखने को बढ़ावा नहीं देत। इसका स्पष्ट प्रमाण है कि स्कूल जाते ही बच्चे सीखना बंद कर देते हैं। भाषा शिक्षण इसका एक अच्छा उदाहरण है। स्कूल जाने से पहले बच्चे सहजता से अनेकों भाषाएं सीख जाते हैं। परन्तु स्कूल में कई साल पढ़ने बाद भी बच्चे कोई नई भाषा नहीं सीख पाते।

एक-दो शताब्दी पहले स्कूलों को अनिवार्य समझा जाता था क्योंकि तब अधिकांश पालक अनपढ़ थे। वर्तमान में इसका बिल्कुल उल्टा है। बहुत से पालक उन शिक्षकों से कहीं ज्यादा पढ़े-लिखे हैं जो उनके बच्चों को पढ़ाते हैं। फिर अधिक पढ़े पालक अपने बच्चों को कम पढ़े शिक्षकों के पास पढ़ने के लिए क्यों भेजते हैं? यह समझ में नहीं आता।

फैक्ट्रियों और स्कूलों के प्रति लोगों का कोई आलोचनात्मक दृष्टिकोण नहीं है। बेहद उम्दा पुस्तक '*डीस्कूलिंग सोसाइटी*' के लेखक इवान इलियच ने लिखा कि इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति के शुरुआती दौर में जब उद्योगपति अपने कारखाने लगा रहे थे तो उन्हें लम्बे घंटों तक चुपचाप बैठकर उबाऊ काम करने वाले मजदूर नहीं मिलते थे। फैक्ट्रियों में सबसे पहले मजदूर भिखारी और खानाबदोश लोग थे। फैक्ट्रियों में काम न करने पर उन्हें जेल में ठूंसने की धमकी दी जातो थी।

भाग्यवश हमारे जैसे कई देशों में जहां औद्योगिक संस्कृति आज भी अपनी पूरी पैंठ नहीं जमा पाई हैं वहां बहुत से मजदूर कार्य पर अनुपस्थित होते हैं। आज भी मुम्बई की फैक्ट्रियों के मजदूर लम्बे अर्से के लिए काम छोड़कर अपने गांव चले जाते हैं। और उनका जिस दिन मन नहीं करता है वे बस उसी दिन काम पर जाते हैं।

प्रतिदिन आठ घंटे उसी मशीन से बंधे रहकर उसी उबाऊ कार्य को बार-बार दोहराना लोगों के प्रति बहुत क्रूरता है। सामान्य इंसान जीवन भर एक-प्रकार के दोहराने वाले उबाऊ काम के खिलाफ कभी जरूर प्रतिरोध करेगा। इस तरह के उबाऊ कार्य शायद मुनाफाखोर पूंजीपतियों के लिए अच्छे हों परन्तु भला मजदूर उससे कैसे एक अच्छी और संपूर्ण जिंदगी जी सकेंग? भगवान ने लोगों को जीवन का बहुमूल्य उपहार और विलक्षण कल्पनाशक्ति दी है। यह उपहार असेम्बली-लाईन पर काम करने अथवा किसी दूसरे के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए नहीं दिया गया है। (यह जानने के लिए कि किस तरह स्कूल, फैक्ट्री की असेम्बली-लाईन की नकल करते हैं एक बेहद सुंदर कार्टून पुस्तक '*डेंजर स्कूल*' पढ़ें। इसे अदर इंडिया प्रेस ने प्रकाशित किया है)।

स्कूल के बारे में चर्चा करते हुए हम कह सकते हैं स्कूल समाप्त होने के बाद ही असली सीख शुरू होतो है। स्कूल में विघ्न पड़ने से सीखने की गति तीव्र होती है। आज सीख को स्थायी और तेज करने

के लिए स्कूलों में परिवर्तन लाने में लोग खुद को असमर्थ पाते हैं। अगर छात्र को भौतिक रूप से स्कूल से निकाला जाए तो उसका सीखना तेजी से बढ़ता है।

तमाम पालकों की तरह हमें भी स्कूल कोई अच्छा विकल्प नहीं लगता है। फिर भी हमने अपने बच्चों को स्कूल भेजा। आदर्श स्थिति में हमें बच्चों को खुद पढ़ाना चाहिए था। ऐसा विकल्प अपनाने वाले कई परिवारों को हम जानते हं। पर हमारे लिए यह सम्भव नहीं था। इसलिए हमने बच्चों के लिए स्कूली संस्कृति के जोखिम को सीमित रखा। हमने बच्चों को कभी भी अतिरिक्त ट्यूशन या कोचिंग के लिए नहीं भेजा। न ही कभी यह तमन्ना रही कि हमारे बच्चे बाकी को हराकर सबसे अधिक अंक प्राप्त करें। स्कूली विषयों में विलक्षणता दरअसल उस विषय को रटने की प्रतिभा होती है। प्रथम आने का कतई यह मतलब नहीं है कि छात्र वाकई में होशियार है और उसकी विषय में रुचि है। पर हमने अपने लड़कों को उनकी कुव्वत के अनुसार श्रेष्ठतम बनने के लिए प्रोत्साहित किया। गोवा से बाहर जाते समय हम बिना किसी हिचक के अपने लड़कों को साथ में ले जाते थे। वे स्कूल नहीं जाएंगे, इससे हम बिल्कुल विचलित नहीं होते थे। हमारा यह भी पक्का विश्वास था कि अच्छी पढ़ाई मातृभाषा में, बाहर के प्राकृतिक वातावरण में, अनुभवी पेशेवर लोगों के साथ ही होती है।

बच्चों को स्वतंत्र रूप से बाहर की दुनिया को समझने और झेलने में सक्षम बनाने की बजाए वर्तमान व्यवस्था उनकी तमन्नाओं को कुचलती है और उन्हें आर्थिक तंत्र में कोई नौकरी खोजने के लिए मजबूर करती है।

राहुल के लिए स्कूल बहुत उबाऊ बन चुका था। फिर भी हम चाहते थे कि वो हाई-स्कूल की परीक्षा पूरी करे। इसके लिए एक उम्दा हल निकाला गया। दसवीं में आते ही हमने राहुल से कहा कि अगर वो मेहनत करके दसवीं में प्रथम श्रेणी लाया तो फिर हम उससे आगे की स्कूली पढ़ाई का आग्रह नहीं करेंगे। राहुल हमारे इस प्रस्ताव पर यकीन नहीं कर पाया।

राहुल न केवल प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ उसे बोर्ड में एक रैंक भी मिली। अब वो एक वर्ष के लिए मुक्त था। एक साल के लिए वो अपनी मनमर्जी से जो चाहें कर सकता था। एक मध्यम वर्गीय परिवार की हैसियत से हम इस मुहिम में उसकी पूरी आर्थिक मदद करते।

एक साल की छुट्टी के लिए हमारी कुछ शर्तें भी थीं।

वो रोजाना की घटनाओं को अपनी डायरी में नियमित रूप से लिखेगा। महीने के अंत में वो एक विशेष रिर्पोट भी लिखेगा जिसमें सभी खास घटनाओं और अनुभवों का जिक्र होगा। हमें लगा इससे उसमें एक अनुशासन बना रहेगा जो किसी भी अच्छी सीख के लिए जरूरी है।

राहुल को यह भी समझाया गया कि किसी भी सामूहिक गतिविधि चुनने के बाद वो उसे दिल लगाकर, आत्म-अनुशासन से करे। क्योंकि कोई विषय 'उबाऊ' था सिर्फ इसलिए उसे छोड़ देना हमें मान्य नहीं था।

प्रतिदिन डायरी लिखना कई मायनों में लाभप्रद रहा। इसमें वो अपने अनुभवों, राय, तथ्यों के साथ-साथ वो आगे क्या करना चाहता था वो भी लिख सकता था। जून से दिसम्बर तक उसके निर्णय कुछ धीमे थे परन्तु जनवरी के बाद राहुल तत्परता से निर्णय ले पाया। इस अंतराल में वा कुछ अन्य नए अनुभवों को छुट्टी समाप्त होने से पहले अपनी सूची में जोड़ पाया।एक 16 साल के लड़के के लिए यह बेहद

लाभप्रद था। इससे पूर्व वो क्या करे, या न करे पूरा तंत्र उसे यही बताता था। भाग्यवश राहुल ने बहुत नियमित रूप से डायरी लिखी। अनीता पिंटो के प्रोत्साहन और मार्गदर्शन से राहुल अपनी डायरी को एक पूरी पुस्तक में परिवर्तित कर पाया।

वर्तमान में स्कूल बच्चों पर लगातार और प्रबल दबाव डालते हैं। दस वर्ष तक नियमित अवधियों पर परीक्षाएं बच्चों के कंधों पर बोझ बनती हैं। बच्चों को दस सालों में इतनी अधकचरी जानकारी क्यों पचानी पड़ती है इसका आजतक कोई तार्किक उत्तर नहीं मिला है। इस अनउपयोगी जानकारी को बच्चे परीक्षाओं में थूक देते हैं। उसके बाद यह ज्ञान किसी काम की नहीं रहता है।

दसवीं की परीक्षा के बाद बच्चों को तुरंत अपना विषय चुनना पड़ता है। कम उम्र, अनुभव के अभाव में बच्चों को अपनी पसंद-नापसंद का कोई अंदाज नहीं होता है। अक्सर यह चयन बच्चे की बजाए उसके महत्वाकांक्षी माता-पिता करते हैं - जो उसे बहला-फुसला कर इंजीनियरिंग या डाक्टरी की पढ़ाई में अधिक कमाई करने के लिए भेज देते हैं। इस निर्णय के बाद और कॉलेज में कुछ वर्ष पढ़ने के बाद छात्र अपनी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं कर पाता है, जबकि उसकी वर्तमान शिक्षा उसके सपनों और आदर्शों के विपरीत होती है।

पढ़ाई से एक साल की छुट्टी मिलने से बच्चे को पहली बार सांस लेने का मौका मिलता है। अपने एक साल के अनुभवां के बाद वो अब एक बेहतर और परिपक्व निर्णय लेने की परिस्थिति में होता है। (देश में रोजगार की स्थिति को देखते हुए अगर बच्चा एक साल बाद नौकरी की लाईन में लगता है तो उससे उसे कोई खास नुकसान नहीं होगा)। हमारी राय में छुट्टी के वर्ष में छात्रों को अपनी रुचि के कई व्यवसायों का अनुभव लेना चाहिए। पालकों के बहुत से मित्र अलग-अलग धंधों में काम करते हैं। इसलिए कम-अवधि की ट्रेनिंग की व्यवस्था करना उनके लिए कठिन काम न होगा। यह प्रशिक्षण गांव अथवा शहर में आयोजित किया जा सकता है या फिर राहुल जैसे उस देश के विभिन्न भागों में आयोजित किया जा सकता है।

छुट्टी के इस काल में छात्रों को किसी भी हालत में अपने माता-पिता के धंधे में हाथ नहीं बंटाना चाहिए। छात्रों को उन्हीं क्षेत्रों में अल्प-अवधि के लिए ट्रेनिंग लेनी चाहिए जिनमें उनकी गहरी रुचि और लगन हो। इस मायने में एक साल की छुट्टी किसी पेशे की तैयारी न होकर, बच्चों को मुक्त रहने और अपनी मनमर्जी की चीजें सीखने का मौका देगी। यह ट्रेनिंग बाद में उनका पेशा बने यह भी जरूरी नहीं है। इस दौरान बच्चे पेंटिंग, संगीत, एक्टिंग, नाच, बढ़ईगीरी, रंगमंच, वेल्डिंग, इंटरनेट और अपनी रुचि के अनुसार जो मर्जी चाहें सीख सकते हैं। छुट्टी का यह काल दस साल तक के उबाऊ पाठ्यक्रम से बिल्कुल भिन्न होगा। अपनी रुचि का काम सीखते वक्त छात्रों को कमाई के बारे में नहीं सोचना चाहिए।

एक साल के सम्पन्न अनुभवों के बाद छात्र को पालकों के साथ मिलकर, खूब सोच-विचार कर आगे क्या करना है इसका निर्णय लेना चाहिए। वो कॉलेज में कौन से विषय पढ़ या फिर कॉलेज को पूरी तरह त्याग दे? हो सकता है अंत में छात्र अपने पालकों का पेशा ही अपनाए। परन्तु यह निर्णय सिर्फ उसका हो, दबाव में नहीं लिया गया हो।

छुट्टी के साल, पालकों को बच्चों से लगातार संवाद साधे रखना चाहिए। इससे वे बच्चे की रुचिओं और निर्णय को बेहतर समझ सकेंगे। नई डगर में तमाम मुश्किलें आ सकती हैं इसलिए पालकों को लगातार बच्चों का मार्गदर्शन और उनकी मदद करनी चाहिए। हम लोग राहुल के साथ बैठकर उसकी रुचियों और परिस्थितियों के अनुरूप उसके कार्यक्रम को निरंतर बदलने में मदद करते थे।

अदर इंडिया प्रेस ने '*फ्री फ्रॉम स्कूल*' को इसलिए प्रकाशित किया है क्योंकि असली जिंदगी के अनुभवों पर आधारित यह पुस्तक पालकों का हौसला बुलंद कर सकती है। अगर उनके बच्चे भी स्कूल को कुछ समय के लिए अलविदा कहेंगे तो वो एक स्वस्थ्य परम्परा होगी। हमारा समाज और स्कूल इस प्रकार की छुट्टियां लेने की अनुमति देता है। मिसाल के लिए छुट्टियां समाप्त होने के बाद राहुल को आगे कॉलेज में पढ़ने में कोई मुश्किल नहीं हुई। यह बहुत जरूरी है कि छात्र और पालक दोनों इस प्रयोग में मिलकर भाग लें। उसके बाद फिर सीखने का मजा ही कुछ और होगा।

क्लॉड एवं नौरमा अलवारिस

पर्रा, अल्मीडावडो

गोवा, 403507, भारत

राहुल अपने गांव पर्रा और परिवार को छोड़कर सांपों और मगरमच्छों की दुनिया खोजने चला है।

लेखक का नमस्कार

अगर साल भर पहले कोई मुझसे खुद अकेले एक पुस्तक लिखने को कहता तो मैं चिल्लाता, 'मैं किताब लिखूं! आप पागल तो नहीं हो गए हैं! मेरे पास लिखने को है ही क्या? मैं बहुत कम जानता हूं!'

परन्तु आज मेरी प्रतिक्रिया बिल्कुल अलग ह। पिछले साल की छुट्टी के दौरान मैंने जो काम किया, उसने मुझे पाठकों तक तमाम रोचक चीजें पहुंचाने का साहस दिया है। जब मेरे माता-पिता ने छुट्टी का प्रस्ताव रखा और उसके लिए सहयोग दिया तो मैं उल्लासित हो गया। आज सत्रह साल की उम्र में खुद पुस्तक लिखने में सक्षम हूं।

एक बड़ा सवाल आप अवश्य पूछेंगे: 'मैंने पिछले साल क्या किया?'

मैंने स्कूल से एक साल के लिए अलविदा कहकर अपने लिए 'वैकल्पिक शिक्षा' का कार्यक्रम बनाया। इस साल मैंने अपनी जिंदगी को असली सांपों, केंचुओं, मेंढकों, मकड़ियों और अन्य जोवों के साथ बिताया। अगर आप सीखने को तैयार हैं तो यह प्राणी आपको बहुत कुछ सिखा सकते हैं।

मेरी एक वर्ष की छुट्टी के पीछे एक इतिहास है . . . बचपन से ही मेरी प्रकृति में विशेष रुचि थी। माता-पिता बताते हैं कि मैं जब छोटा था तो मं चींटियों के आने-जान, या मुर्गियों के दाना बीनने को घंटों निहारता रहता था। जो कुछ भी मै। देखता बाद में मैं सबको उसका सजीव विवरण सुनाता।

बचपन में एक बार मैंने दो मुर्गों की लड़ाई भी आयोजित की थी।

बचपन में मेरे पास कई पालतू जानवर थे। उनमें एक छोटी बत्तख और एक सफेद चूहा था। स्कूल से वापस आने के बाद मैं तुरन्त सफेद चूहे को अपने कंधे पर लेकर घूमता था। खरगोशों को इधर-उधर ले जाते वक्त चूहा मेरे पूरे शरीर पर दौड़ लगाता था। जैसे-जसे मैं बड़ा हुआ वन्य-जीवन में मेरी रुचि बढ़ी। जब मैं नवीं में था तब हमारा पूरा परिवार पुण में छुट्टी मनाने गया। उन छुट्टियों का एक मुख्य आकषण पुणे स्थित सर्प-उद्यान की सैर थी।

सांपों और सपेरों ने मुझे हमेशा ही आकर्षित किया। मेरे पिताजी ने सर्प-उद्यान के निदेशक श्री नीलम खैरे से पूछा कि क्या मैं हाई-स्कूल समाप्त करने के बाद वहां सांपों के बारे में सीखने के लिए आ सकता हूं। निदेशक ने इसके लिए सहर्ष हामी भरी। उसके बाद मेरे माता-पिता ने मेरे सामने एक प्रस्ताव रखा - अगर मैंने हाई-स्कूल में जमकर पढ़ाई की तो मुझे स्कूल से एक साल की छुट्टी मिलेगी। इस प्रकार स्कूल से साल भर की छुट्टी का सिलसिला शुरू हुआ।

माता-पिता के प्रस्ताव से मैं बहुत खुश था और मैंने परीक्षा के लिए बहुत मेहनत की। जब रिजल्ट आया तो मैं 87-प्रतिशत अंकों के साथ सम्मान-सहित उत्तीर्ण हुआ और उस साल परीक्षा में बैठे 20,000 छात्रों में मेरा 168वां स्थान आया। इसके बाद मंने अपने माता-पिता को उनका वादे याद दिलाया। उनके राजी होने पर मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। जब मेरे बाकी साथी कॉलेज जा रहे थे तब मैं एक साल, मुक्त होकर खुशो-खुशो जंगली जानवरों के साथ बिता रहा था।

मेरे माता-पिता ने एक प्रमुख शर्त रखी। मैं रोज डायरी लिखूं और उसमें साल भर में घटी छोटी-बड़ी घटनाओं और अनुभवों को दर्ज करूं। साथ-साथ मैं रोचक घटनाओं के बारे में मासिक और विशेष रिर्पोर्ट्स भी लिखूं। यह लिखाई मुझे स्कूल के होमवर्क जैसी ही लगी और शुरू में नियमित डायरी लिखने में मुझे बहुत आलस्य आया। पहले कुछ दिनों की मेरी डायरी काफी उबाऊ और अपूर्ण थी।

फिर एक रात मरी मां ने मुझे डायरी लिखने का महत्व समझाया। उन्होंने मुझ डायरी लिखने का तरीका भी बताया। डायरी पृथ्वी हिलाने वाली या दिल दहलाने वाली खबरों के लिए ही नहीं थी। डायरी का महत्व रोजमर्रा की छोटी-मोटी चीजें दर्ज करने में था। बाद में डायरी उस दिन की घटनाओं के विस्तृत चित्र को कल्पना करने में सहायता करती। इसमें फोटोग्राफ्स का बहुत अहम रोल था। फिर मैं मां के सिखाए अनुसार डायरी लिखनी शुरू की। आज मैं यह पुस्तक इसीलिए लिख पाया हूं क्योंकि मैं अपनी याददाश्त को डायरी के पन्नों से मिला पाया हूं। बस डायरी का एक पन्ना पढ़ने के बाद उस दिन की घटनाओं का संपूर्ण विस्तार किसी चलचित्र की भांति मेरे जहन में स्पष्ट रूप से उभर उठता है।

अब आप पुस्तक का मजा लीजिए!

अध्याय १:

माप्सा में एक मछली की दुकान

आपको अच्छी तरह से यह बता दूं कि जब मैंने स्कूल जाना बंद किया तो मैं एकदम अनजान था। मैंने न तो पहले कभी यात्रा की थी और न ही मैंने कभी टिकट खरीदा था। मेरी उम्र के बच्चे केवल अपने माता-पिता के साथ ही यात्रा करते हैं, टिकट खरीदते हैं, या फिर परिवार वालों के साथ मिलकर ही कोई निर्णय लेते हैं। रुपए-पैसों को किस तरह सम्भाला या खर्च किया जाए यह भी मुझे कुछ पता नहीं था। मैं केवल 50-पैसे या अधिक-से-अधिक एक रुपया ही खर्च करना जानता था, क्योंकि मुझे इनता ही पांकेट-मनी मिलती थी। इसलिए जब मैंने सबसे पहले यात्रा का सोची तब मेरे माता-पिता ने बुद्धिमानी से मुझे सिर्फ अपने घर से गोवा तक अकेले यात्रा करने की अनुमति दी। उन्होंने मुझे बताया कि बरसात के मौसम
में घर से बाहर यात्रा करने में काफी परेशानियां आ सकती थीं।

अपने गांव के पास माप्सा स्थित एक मछली की दुकान से मैंने अपनी पहली यात्रा शुरू की। इस दुकान के मालिक - अशोक डीक्रूज और मेरे पिता कालेज के दिनों के मित्र थे। उनके साथ मैंने अपनी यात्रा शुरू की। अशोक के बारे में मैं आपको कुछ बताना चाहूंगा। वो एक साधारण दुकानदार नहीं थे। उन्हें मछली पालने का बहुत शौक था। वो अपने ग्राहकों के साथ मछलियों के बारे में खूब रोचक बातें करते थे। पैसे कमाने से ज्यादा उन्हें मछलियों से प्यार था। मैंने उन्हें ग्राहकों से मछलियां खरीदने के लिए कभी जबरदस्ती आग्रह करते नहीं देखा। उनके पास मछलियों का बहुत बड़ा भंडार था।

वास्तव में अशोक ने ही मुझे मछलियों के विचित्र संसार से परिचित कराया। तब मैं 9 साल का था और पांचवी में पढ़ता था। उनके मार्गदशन में मैंने गप्पी, प्लेटीज और मौलीज जैसी सामान्य मछलियों की पैदाइश और उनके पालन-पोसन के बारे में बहुत कुछ नया सीखा। मैं जब अपने प्रयोगों में सफल हुआ तो मुझे बेहद खुशी हुई। अशोक ने उदारतापूर्वक मुझ से बेबी मछलियां खरोदकर मुझे प्रोत्साहित किया। इससे मुझमें काफी आत्मविश्वास आया। फिर कुछ जटिल प्रकार की मछलियों जैसे - सियामीज लड़ाकू मछली और नीली गुरामीज के बारे में भी मैंने अशोक से सीखा।

मैं रोजाना सुबह 9 बजे अशोक की दुकान पर तेजी से साइकिल चलाता हुआ जाता और वहां दोपहर खाने के समय तक ठहरता था। इस दौरान अशोक मुझसे जो भी काम करने को कहते मैं उसे करता था।

अशोक की दुकान बहुत बड़ी नहीं थी। गोम्स-कटाओ काम्पलेक्स में नीचे की मंजिल पर उनकी दो-कमरों की दुकान थी। दुकान का आगे वाला हिस्सा मछली प्रदर्शन के लिए और पीछे वाला भाग स्टोर रूम था। अगले हिस्से में मछली रखने के पच्चीस छोट-छोटे पारदर्शी कांच के एक्वेरियम (मछलीघर) थे जिसमें अशोक मुम्बई से खरीदी हुई मछलियों को रखते थे। प्रत्येक टैंक में एक विशेष प्रकार की मछली की जाति ही होती थी। अशोक की दुकान भीड़ वाले बाजार से दूर थी। इसलिए वहां हर साधारण ग्राहक नहीं पहुंच पाता था। फिर भी अशोक के बंधे हुए ग्राहक हमेशा वहां आते रहते थे। दुकान पर रोजाना कम-से-कम 20 से 30 ग्राहक आते थे।

प्रारम्भ में कुछ दिनों में मेरा काम सिर्फ मछलीघरों की निगरानी करना ही था। मैं गंदे टैंकों को साफ करता, मरी हुई मछलियों को बाहर फेंकता और कुछ अन्य छोटे-मोटे कार्य भी करता था। मैं मछलियों को

भोजन देता और घायल तथा बीमार मछलियों का इलाज भी करता था। कभी-कभी मैं ग्राहकों से बातचीत भी करता था। धीरे-धीरे मैं भी अशोक के साथ अलग-अलग जगहों पर जाने लगा।

मोयरा नामक स्थान पर एक दकानदार अपने घर में मछलीघर बनाना चाहता था। उसके पास एक कांच की टंकी थी। वो आदमी जो चाहता था उसके बारे में उसके विचार स्पष्ट और पक्के थे। उसने हमें लेने के लिए अपनी कार भेजी। उसके घर में हमने टैंक की स्थिति, बिजली की व्यवस्था, पानी फिल्टर करने का इंतजाम, मछलियों की प्रजातियां और उनकी तादाद के बारे में चर्चा की। हमने उसकी तमाम जरूरतों को नोट किया और फिर हम माप्सा लौटे। बाद में वो हमारी दुकान पर सामान लेने लिए आया जिसे हमने व्यवस्थित रूप से तैयार रखा था।

दूसरी बार मैं अशोक के साथ एक ग्राहक के दफ्तर में एक जोड़ी 'बौनी गुरामीज' देने और मछली टैंक के पीछे पृष्ठभूमि पर एक चित्र लगाने गया। ऐसे अवसरों पर मैं अशोक के कार्य को खूब ध्यान से देखता था। उसके बाद से ग्राहकों की छोटी-मोटी मामूली समस्याओं निबटाने के लिए अशोक ने मुझे उनके घर भेजना शुरू कर दिया।

मैं ग्राहकों के घर में मछली-टैंक की उपयोगी वस्तुएं - हवा का पम्प, पानी छानने वाले फिल्टर और टैंक में खिलौने लगाने का काम करने जाने लगा। कभी-कभी मैं बीमार मछलियों को देखने भी जाता। अगर मछली-टैंक में मछलियां मर जातीं तो मैं जाकर ग्राहकों की इच्छानुसार उन्हें ढेर सारी नई मछलियां देने जाता। मुझे ग्राहकों से पैसे लेने के लिए भी जाना पड़ता था। कभी-कभी मछली-टैंक का सामान्य हाल-चाल जानने के लिए भी अशोक मुझे अपने ग्राहकों के पास भेजते थे। कभी-कभी मैं खुद पहल करके उन घरों मं जाता जहां अशोक ने मछली-टैंक लगाए थे। वहां मैं मछलियों को खुशी से खेलते-तैरते देखकर आनंदित होता था।

माप्सा शहर में अशोक की दुकान में मछलियों को खाना खिलाते हुए।

एक दिन अशोक ने मुझे एक अन्य मछली की दुकान में जासूसी करने भेजा। मुझे वहां मछलियों और उनके भोजन के दाम मालूम करने थे। उस दुकान और हमारी दुकान में बिक्री को लेकर स्पर्धा रहती थी। मैं एक साधारण ग्राहक की तरह उस दुकान में प्रवेश किया। पूरी दुकान देखने के बाद फिर मैंने धीर से दुकानदार से मछलियों और उनके भोजन की कीमत पूछी। पूरी जानकारी हासिल करके मैंने एक सस्ती मौलीज मछली भी खरीदी ताकि दुकानदार मुझे एक साधारण ग्राहक ही समझे। पूरी जानकारी लेने के बाद मुझे पता चला कि उस दुकान पर चीजें अशोक की दुकान से सस्ती थीं।

यहां थोड़े से समय में मछलीघरों के बारे में मेरी जानकारी में बहुत इजाफा हुआ। ऐसा सिर्फ दो कारणों से हुआ। पहली बात थी कि मैंने अशोक की दुकान पर बहुत बारीकी से ध्यानपूर्वक मछलियों का अध्ययन किया था। दूसरे मेरे पिताजी ने मछलियों से सम्बंधित मेरे लिए अनेकों पुस्तकें खरीदीं थीं जिनसे मैं हाई स्कूल की परीक्षा में 'विशेष-योग्यता' पाने में सफल हुआ था। पुस्तकें काफी मंहगी थीं फिर भी मुझे लगा कि मैंने उनकी कीमत वसूल की थी। इन पुस्तकों को पढ़कर मुझे मछलियों के बारे में ढेरों तार्किक जानकारी के साथ प्रैक्टिकल अनुभव भी मिला। इस प्रकार ज्ञानवर्धन के साथ-साथ मेरा आत्मविश्वास भी बढ़ा।

अशोक की दुकान पर काम करते हुए मुझे मछलियों के लिए टंकियां बनाने के कई महत्वपूर्ण अनुभव हासिल हुए। एक दिन अशोक ने कहा कि क्योंकि उसका धंधा मंदी के दौर से गुजर रहा था इसलिए वो मुझे मछलियां रखने वाली टंकियां बनाना सिखाएगा। इस काम को एकदम शुरू से सीखने के लिए हमें छह टंकियों के लिए खास नाप के कांच के टुकड़े कटवाने थे और उन्हें बिना खरोंच लगे दुकान तक लाना था।

मैं अशोक के साथ कई बार पहले भी कांच की दुकानों पर जा चुका था। मैंने उसे कांच का आर्डर देते हुए देखा था। कांच के टुकड़े का माप गलत निकलने पर वो उसे दुबारा कटवाता था। मुझे अक्सर कांच की दुकानों पर छोटा-मोटा सामान खरीदने के लिए भेजा जाता था। इससे धीरे-धीरे मेरा दुकानदारों से परिचय हो गया था और मुझे उनके काम करने के तरीकों को भी जानकारी भी हुई। अशोक ने तो मुझे कटे कांच के टुकड़ों की कीमत जोड़ने को कला भी सिखा दी थी। इसलिए जब एक दिन अशोक ने मुझे पैसे और सामान्य निर्देश देकर कांच लाने को कहा तो मुझे बहुत अच्छा लगा। अब मैं अपने दिमाग से काम कर सकता था।

मैं उपयुक्त कांच खरीद कर उसके सही नाप के टुकड़े भी कटवाए। यहां तक तो सब ठीक था। परंतु कांच को दुकान तक ले जाना एक टेढ़ी खीर थी। क्या मैं कांच को रिक्शा पर लेकर जाऊं? मुझे इस छोटी दूरी के लिए रिक्शा के भाड़े का कोई अंदाज न था। मैं क्या करूं यह सोच रहा था और कांच के टुकड़ों के भार का अनुमान लगा रहा था इतने में दुकानदार ने मुझे माल थमा दिया। उसने कहा मैं आसानी से अशोक की दुकान तक उसे ले जा पाऊंगा। अंत में मैंने वही किया।

मैंने अपनी यात्रा शुरू की। शुरू में तो कोई दिक्कत न आई। पर धीरे-धीरे बोझ बढ़ता गया और मैं कैसे-कैसे करके रिक्शों और हार्न बजाती टैक्सियों और मोटरसाइकिलों के बीच से बचता-बचाता अशोक की दुकान तक पहुंचा। मंजिल पर पहुंचने से पहले ही मुझे अपनी अक्ल पर शक होने लगा था। मैं बुरी तरह थक गया था और मेरी बांहों में दर्द हो रहा था। लेकिन फिर भी जमीन पर कांच रखने की मेरी हिम्मत नहीं हो रही थी। कांच कहीं टूट गया तो? दुकान पर कदम रखकर मैंने चैन की सांस ली - क्योंकि कांच अभी

भी साबुत था। अशोक मेरी इस नादानी पर बेहद बौखलाया। अगर रास्ते में कोई दुर्घटना हो जाती तो क्या होता? आखिर मेरी देखभाल भी तो उनकी जिम्मेदारी थी। उस दिन सच में मैंने जिंदगी का एक अहम सबक सीखा।

मछलियों के लिए टंकी बनाना एक बहुत मजेदार काम है। इसके लिए सबसे पहले टंकी का माप निश्चित करना होता है। फिर टंकी की लम्बाई तय करनी होती है। उसके अनुपात में चौड़ाई और ऊंचाई ज्ञात करनी होती है। टंकी की कांच की दीवारों को सिलिकॉन से जोड़ना होता है। यह एक प्रकार का रबर जैसा गोंद है जो सूखने के बाद सख्त हो जाता है। सिलिकॉन पानी में घुलता नहीं है। सिलिकॉन को दो कांच के सिर्फ जोड़ों पर हो लगाना चाहिए और बाकी कांच से बिल्कुल नहीं छूना चाहिए। नहीं तो कांच देखने में गंदा दिखेगा। सिलिकॉन के धब्बे कांच में हमेशा के लिए चिपक जाएंगे। मजबूती के लिए टंकी को अंदर से भी सिलिकॉन द्वारा सील करं, फिर उसे दिन भर सूखने के लिए छोड़ दें। दूसरे दिन टंकी में पानी भरकर उसकी जांच करें। जांच में खरी उतरने के बाद ही आप ग्राहक को मछली की टंकी बेंच सकते हैं।

टंकी बनाना सीखन के बाद मैंने बाकी टंकियों के बनाने में मदद की। एक बार मुझसे कांच उल्टा चिपक गया। उसे देखकर अशोक ने कहा, 'यह टंकी कुछ अजीब सो लग रही है।' जब उसे मेरी गलती मालूम हुई तो वो मुझ पर बहुत बौखलाया।

मेरी काबलियत को जांचने का मौका इस सवाल का हल खोजते समय मिला - टंकियों में मछलियां मरती क्यों हैं? ग्राहकों से अक्सर यह शिकायत मिलती थी। कैलंगूट में आस्बार्न होटल के मैनेजर ने अशोक से उनके होटल में लगे एक्वेरियम का मुआयना करने के लिए बुलाया, क्योंकि उसमें मछलियां मर रही थीं। क्योंकि होटल का मालिक अशोक का जिगरी दोस्त था इसलिए अशोक उस समस्या को जल्दी सुलझाना चाहते थे। कुछ कारणों से अशोक उस दिन जा नहीं पाए, परन्तु वो जल्दी स जल्दी समस्या का निदान करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने मुझे वहां भेजा। उन्होंन मुझे मैनेजर का विजिटिंग कार्ड दिया, होटल का रास्ता बताया, और कुछ मछलियों की दवाईयां और पुराने खराब पम्प को बदलने के लिए एक नया पम्प लेकर मुझे वहां भेजा। अब मुझे ही वा समस्या सुलझानी थी। मैं खुश था और अपने ऊपर गर्व कर रहा था कि इस महत्वपूर्ण कार्य को समपन्न करने के लिए अशोक ने मुझ पर विश्वास किया था।

शाम को मैं होटल ऑस्बार्न जाने के लिए बाहर निकला। होटल खोजने में कोई दिक्कत नहीं हुई। वो एक बड़ा होटल था। वहां हरी घास के बड़े लॉन थे और एक स्विमिंग-पूल भी था। मैंने गर्व के साथ सिर ऊंचा करके होटल में इस अंदाज में प्रवेश किया जैसे मैं मछलियों का कोई बड़ा अनुभवी डाक्टर हूं। अंदर जाकर मैं होटल के मैनेजर से मिला। मैनेजर ने मुझे मरी हुई मछलियां दिखाईं। मैंने मछलियों में बीमारियों के लक्षण खोजे लेकिन मुझे कोई भी सुराग नहीं मिला। फिर मुझे समझ में आया समस्या बहुत ही सरल और मामूली थी - कारण था मछलियों को आवश्यकता से अधिक भोजन मिलना। मछलियों को आहार उनकी आकार और लम्बाई के अनुसार ही मिलना चाहिए। लेकिन लोग मछली-टंकी में जरूरत से ज्यादा भोजन डालते हैं। यह अतिरिक्त भोजन पानी को गंदा तथा मलिन करता है जिससे मछलियां मर जाती हैं।

मैंने टंकी को साफ किया। पानी के फिल्टर को दुबारा जांचा। फिर होटल के कर्मचारियों को मछलियों को भाजन खिलाने का तरीका दिखाया। फिर मैंने उनसे मछलियों के लिए कुछ आवश्यक दवाईयां खरीदेने को कहा जो उन्होंने सहर्ष खरीदीं। मैंने दवाईयों की कीमत का बिल बनाया। बिल की किताब अशोक ने मुझे दी थी। वो लोग मेरे काम से संतुष्ट दिखे और उन लोगों ने मेरे लिए चाय मंगाई। पर क्योंकि मैं चाय

कभी पीता नहीं हूं इसलिए मैंने चाय नहीं पी। इस कार्य को खत्म करके मैंने वहां से निकला। अशोक को अपना अनुभव सुनाने को मैं बेहद उत्सुक था।

इस दौरान मैंने पंजिम स्थित कुछ मछलियों की दुकानों का दौरा किया। मैंने इनके बारे में सुना था पर मैं वहां कभी गया नहीं था। इसका मौका मुझे तब मिला जब मेरी 3-गियरों वाली साइकिल बिगड़ गई और उनके पुर्जे लेने मुझे पंजिम जाना पड़ा। मैंने अपनी मां से पुर्जे लाने की गुजारिश की क्योंकि वो पंजिम आती-जाती रहती थीं। उन्होंने साफ इंकार किया और कहा कि मुझे अपना काम खुद करना सीखना चाहिए। इसलिए साइकिल के गेयर खरीदने के लिए मैंने पंजिम जाने का कार्यक्रम बनाया। उसके साथ-साथ कुछ मछलियों की दुकानों का दौरा करने और अशोक के लिए कुछ सामान खरीदने के बारे में भी सोचा।

अगली सुबह मंने अपनी मां क साथ पंजिम की बस पकड़ी। मां ने मुझे पंजिम के कुछ मुख्य स्थान दिखाए और फिर मुझे अपने हाल पर छोड़ दिया। शुरू में मैं अकेले थोड़ा घबराया, फिर मैंने काम को पूरा करने का निश्चय किया। मुझे भूख लग रही थी इसलिए सबसे पहले मैंने कामत रेस्टां में जाकर नाश्ता किया। इससे मुझे पता चला कि घर की अपेक्षा बाहर खाना कितना ज्यादा मंहगा था। उसके बाद मैंने अशोक के निर्देशों के अनुसार दुकान खोजकर वहां से सिलिकोन गोंद खरीदा। कई लोगों से पूछने के बाद मुझे सही दुकान मिली। मैंने मछलियों की अन्य कुछ दुकानें भी देखीं और अशोक के लिए कुछ और सामान भी खरीदा। साइकिल की दुकान मुझे जल्दी ही मिल गई। परंतु जो पुर्जा मुझे चाहिए था वो वहां नहीं था। दुकानदार ने कहा कि पुर्जा अगले हफ्ते तक आएगा।

वहां से फुर्सत पाकर मैं दो और मछलियों की दुकानों पर गया। मुझे दो दुकानों के नाम याद थे '*बिसलिन*' और '*समथिंग फिशी*'। '*बिसलिन*' में सामान का ढेर स्टाक था। वहां कई प्रकार की विदेशी मछलियां भी थीं - जो काफी मंहगी थीं। यह दुकान एक परिवार चलाता था। मैंने उन लोगों से बातचीत भी की। दुकान चिड़िए भी बेंचती थी। वहां कुछ देर मछलियों को निहारने के बाद मैं दूसरी दुकान '*समथिंग फिशी*' की ओर चला जो पास में ही थी। इस दुकान में जाकर मुझे निराशा हुई क्योंकि वहां बहुत कम मछलियां थीं। एक सहायक ने बताया कि व नई मछलियों के आने का इंतजार कर रहे थे इसीलिए अभी उनके सारे टैंक खाली थे। जो मछलियों टंकियों में बची थीं उन्हें देखकर मुझे बेहद आश्चर्य हुआ। मैंने जिंदगी में पहली बार आदमखोर '*पिराना*' मछलियों को अपनी आंखों से देखा! वैसे यह '*पिराना*' मछलियां काफी पालतू और शर्मीली दिख रही थों। पर जब उन्हें भूख लगती है तो वे नरभक्षी हो जाती हैं। '*समथिंग फिशी*' में मुझे एक अनूठी मछली '*ब्लैक घोष्ट*' दिखाई दी, जिसकी एक जोड़ी 3000 रुपए की बिकती थी।

अशोक की दुकान पर सीखने के साथ-साथ मैंने और भी तमाम सम्पन्न अनुभव हासिल किए।

इससे पहले मैंने बैंक का काम कभी नहीं किया था। एक दिन अकस्मात अशोक ने मुझसे पूछा कि क्या मैं बैंक जाकर पैसे निकाल पाऊंगा। इससे मैंने पहले कभी बैंक में कदम नहीं रखा है। पर यह कहने का मेरा मन नहीं करा। मैंने बैंक का रास्ता मालूम करके वहां जाने के लिए निकला। मैंने रास्ता ढूंढा और बैंक के काम को पूरा किया। उसके बाद मुझे बैंक में पैसा जमा करने और निकालने के लिए कई बार भेजा गया।

बैंक ऑफ गोवा

मेरे पास काफी वक्त था, फिर भी मैं अपने समय का समुचित उपयोग नहीं कर पा रहा था। कई बार देरी से उठने के कारण मैं अशोक की दुकान पर तेजी से साइकिल चलाता हुआ पहुंचता था। दिन का काम पूरा नहीं कर पाने के कारण मैं दोपहर का भोजन बहुत देरी से करता था। दिन की योजना ठीक प्रकार बनाने से सब काम समुचित तरीके से सम्पन्न होता जाता था। यह अपने आप में एक सुखद अनुभव था। सब काम समय पर पूरा करने से मुझे बहुत खुशी मिलती थी।

यहां मुझे अपने मनपसंद के कामों और रुचियों को समझने का पहली बार मौका मिला। अब मैं जिंदगी में पहली बार प्रयोग करने और खुद अपने आप अहम निर्णय लेने के लिए मुक्त था।

यहां मैंने पर अपने पुस्तक पढ़ने के शौक को खोजा। मैं रोजाना दुकान पर जाते वक्त लाइब्रेरी से मुक्त समय में कुछ पढ़ने के लिए कुछ किताबें लेकर जाता था। मेरी सबसे पसंदीदा '*हार्डी*' सीरीज की पुस्तकें थीं और इस पूरी श्रृंख्ला को मैंने अशोक की दुकान में काम करते समय पढ़ डाला था। मुझे '*टिनटिन*' और '*फैन्टम*' कॉमिक्स पढ़ने में भी मजा आता था।

शाम को अशोक की दुकान का काम समाप्त कर मैं '*एफ-एम*' रेडियो बड़े चाव से सुनता था। अन्य बच्चों की तरह मुझे भी तेज और जोरदार संगीत पसंद था। सौभाग्य से मेरी आंटी कनॉडा से मेरे लिए एक वाकमैन लाईं थीं। उसकी कारण मैं दूसरों को तकलीफ दिए बिना अपना मनपसंद संगीत सुन पाता था। मैं गिटार सीखना चाहता था पर क्योंकि मुझ कुछ महीनों बाद गोवा छोड़ना था इसलि मेरे माता-पिता ने गिटार सीखने से मना किया। पत्र लिखने का मुझे शौक नहीं था। पर कुछ लोगों ने मुझे परीक्षा पास करने पर बधाई के पत्र लिखे और मुझे नकद ईनाम भी भेजे। उन लोगों को तो मुझे जवाब देना ही था। मुझे तब बहुत खुशी हुई जब कई रिश्तेदारों ने मुझे एक साल के लिए स्कूल से छुट्टी लेने के लिए बधाई दी। मुझे इस बात का भी अहसास हुआ कि लोगों को पत्र लिखने पर ही उनके जवाब मिलते हैं। वैसे मुझे अभी भी पत्र लिखना नापसंद है।

रविवार वाले दिन मैं कुछ छिटपुट काम करके कुछ अतिरिक्त पैसे कमा लेता था। इसमें कार धोना शामिल था जिसके लिए पिताजी मुझे पांच रुपए देते थे। मैं घर के कई काम करता था जिसमें बिजली का बिल भरना और राशन खरीदना शामिल था।

अशोक की दुकान पर काम करने की शुरुआत बहुत अच्छी रही।

फील्ड ट्रिप के नोट्स:

अब जूली के पास एक मछली-टैंक है

जूलियट और पीटर डिसूजा मेरे माता-पिता के कालेज के मित्र हैं। वे कैलंगूट में रहते हैं। पीटर फौजदारी के वकील हैं और जूलियट स्कूल में टीचर हैं। अक्सर हमारे परिवार मिलकर पिकनिक मनाने जाते हैं। एक पिकनिक के दौरान जब जूलियट को मछली-टैंक बनाने में मेरी रुचि के बारे में मालूम पड़ा तब उसने मुझसे घर में एक मछली-टैंक स्थापित करने में मदद मांगी।

असल में उनके पास पहले से एक मछली-टैंक था परन्तु उसके पेंदा के कांच चटख गया था। इसलिए जूलियट ने उसे अशोक को मरम्मत के लिए दिया था। फिर वो अशोक की दुकान में बहत दिन पड़ा रहा और किसी ने उसकी खबर नहीं ली। जूलियट ने मुझे कई बार मछली-टैंक की मरम्मत की याद दिलाई।

पर मैं भला अशोक तक यह संदेश पहुंचाने के सिवाय भला और कर भी क्या सकता था। अशोक के साथ काम करते समय मैंने जूलियट को दिए अपने वायदे को पूरा करने की सोची।

पहली समस्या थी कि टैंक खोजने की। जब मैंने अशोक की दुकान में खोज शुरू की तो मुझे वो टैंक तमाम बड़ी मछली-टंकियों के नीचे पड़ा मिला। वो अभी भी साबुत था यह देखकर मुझे प्रसन्नता हुई। हमने टूटे कांच का माप लिया और फिर उस कांच को दुकान स जाकर खरीदा। टंकी दुरुस्त करके मैं पीटर के दफ्तर में गया और उससे शाम को आफिस से घर जाते हुए मछली-टंकी साथ ले जाने को कहा।

अगली दिन शाम पीटर टैंक को घर ले गया। कुछ दिनों बाद मैं साइकिल पर उनके घर मछली-टंकी को फिट करने गया। वहां जाकर मुझे पता चला कि टंकी के पेंदे में रखने के लिए जूलियट पर पास कोई सामग्री नहीं थी। जो थोड़ी बहुत बजरी थी वो अपर्याप्त थी। मैंने इन जरूरी चीजों के बारे में जूलियट को बताया और उसने उन चीजों के अलावा सजावटी सामान को खरीदने की मुझे पूरी छूट दी। मैं अगली बार उनके घर पर कई किलो कंकड़, पम्प, प्लास्टिक के पौधे, मछलियों की दवाईयां, फिल्टर, लचीले पाईप, कुछ रेग्युलेटर, टी-ज्वाइंट और मछली का जाल लेकर पहुंचा। जूलियट के मछली-टंकी में रखने के लिए मैं दो अलग-अलग प्रकार के सीप और खिलौने भी ले गया।

सबसे पहले मैंने कंकड़ों को धोया और फिर उसके नीचे फिल्टर फिट किया। फिर मैंने टंकी के पूरे पेंदे के ऊपर कंकड़ बिछाए और उन पर सीप और खिलौने सजाए। फिर नल और फिल्टर को हवा के पम्प के साथ जोड़ा। काम के दौरान जूलियट की दोनों छोटी बेटियां एंजिलएन और मिरियम मुझे लगातार ध्यान से देखती रहीं। वो लगातार टिप्पणियां देती रहीं और कभी-कभी मदद भी करती रहीं। दो घंटे में पूरा काम पूरा हुआ। अब टंकी में पानी के पौधे और मछलियां डालना ही बचा था।
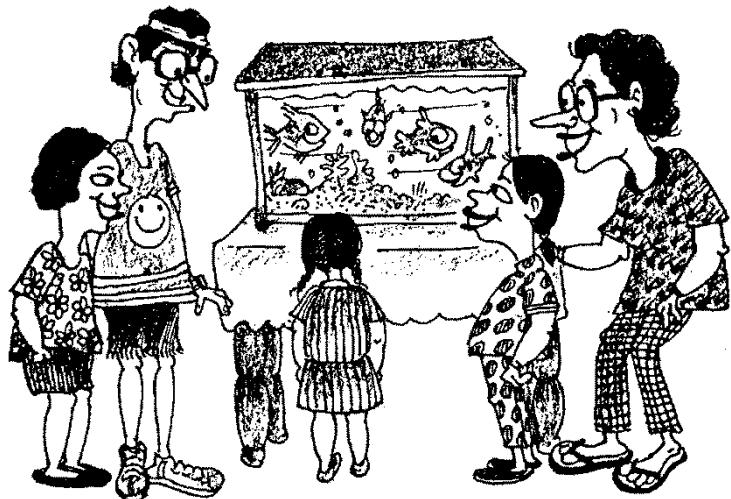
मछलीघर के लिए मछलियां चुनने का काम मुझे नहीं सौंपा गया था। जूलियट ने कहा था कि वो कैंडोलिम से मछलियां खरीद कर लाएगी। उसे लगा कि कैंडोलिम में पानो के पौधे नहीं मिलेंगे इसलिए उसने मुझे उन्हें पीटर के साथ भेजने को कहा। जूलियट ने मुझ से बिल बनाकर उसे पीटर के हाथ भेजने को कहा। अगले दो दिनों में मैंने यह किया।

एक हफ्ते बाद मुझे अपने पिताजी का एक पत्र लेकर पीटर और जूली के घर जाना पड़ा। मैं जूली द्वारा लाई मछलियां देखने के लिए उत्सुक था। क्या वो मेरे बनाए घर में खुश थीं? भेंट स्वरूप मैं अपने बाग

के तालाब में से उनके लिए पांच जोड़ी '*गप्पी*' मछलियां लेकर गया। मछलीघर एकदम खाली था, बिल्कुल वैसा जैसे मैं उसे छोड़कर गया था। यह देखकर मुझे बड़ा धक्का लगा। मैं खुश कि मैं साथ मैं साथ में कुछ मछलियां तो लाया था। मेरी मछलियों से मछलीघर पहली बार आबाद हुआ। मैंने पानी के पौधों, हवा के रेग्युलेटर और बल्बों को सम्भाल कर फिट किया।

जब मैं मछलीघर को निहारने पीछे हटा तो जूलियट की छोटी बेटियों ने मुझे घेर लिया। मछलियां अभी-अभी लगाए पौधों के बीच मजे में इधर-उधर थिरक रही थीं और हवा के फिल्टरों से बुलबुले बाहर निकल रहे थे। जल्द ही जूलियट भी वहां पहुंचीं और उन्होंने प्रेम से मुझे धन्यवाद दिया और फिर मेरी जेब में पचास का नोट डाल दिया। मैंने पैसे लेने से इंकार किया और कहा कि यह सब मैंने अपने मजे के लिए किया था। परन्तु वो अपनी बात पर अड़ी रहीं और मुझे पैसे लेने पड़े। यह मेरी पहली कमाई थी।

इस तरह मैंने परिवार के कई मित्रों के घरों में मछलीघर लगाए। मुझे इनमें बहुत मजा भी आया, मेरा अनुभव भी बढ़ा, और जेबखर्च के लिए पैसे भी मिले! माप्सा में अवधूत और रेखा मुंज के घर पर मैंने उनकी बेटी के लिए एक बड़ा मछलीघर फिट किया। पर्रा में एल्विटो और सिलीन के घर पर भी एक खाली मछलीघर पड़ा था जिसे वो मरम्मत करवा कर उपयोग करना चाहते थे। मैंने उन्हें मछलियां लाकर दीं।

मोन्टे ग्यूरिम में स्थित मेरे स्कूल सेंट एंथनीज के प्रिंसिपल के दफ्तर में भी एक बड़ा मछलीघर था। अपने छात्र दिनों में मैं उसकी देखरेख करता था। बाद में अपने छोटे भाई मिलिंद के जरिए मैं उसके बारे में जानकारी हासिल करता रहा। मिलिंद को मेरी की तरह मछलियों का बेहद शौक था।
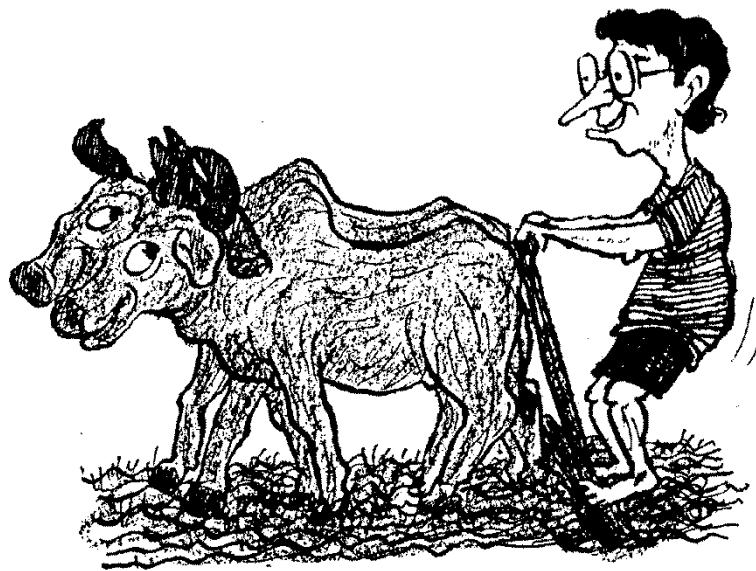
अध्याय २:

कुछ खेती के बारे में सीखना

बारिश के मौसम में मेरा इरादा वालपोई के पास स्थित छोटे से गांव थानेम के '*रस्टिक फार्म*' पर खेती सीखने का था। यह स्थान सत्ताई जिले के उत्तरी-पूर्व मं स्थित है। '*रस्टिक फार्म*' का मेरे लिए एक खास आकर्षण इसलिए है क्योंकि मैं वहां पैदा हुआ था। तब मेरे माता-पिता वहीं रहते थे और मैं तीन साल तक वहीं पला-बढ़ा था। वैसे मुझे वहां बिताए दिनों के बारे में अब कुछ याद नहीं है परन्तु वहां पर मेरे बचपन के तमाम फोटो हैं और मेरे माता-पिता वहां के बारे में मुझे अनेकों कहानियां सुनाते हैं। अभी भी हम साल में एक बार वहां जरूर जाते हैं और जो किसान तब फार्म पर काम करते थे उनसे मिलते हैं। येसू जो हमारे घर में पिछले 16 सालों से काम करता है भी उसी इलाके स आता है। 1985 में '*रस्टिक फार्म*' को श्याम और उज्जवला अचरेकर को बेंच दिया गया था। मैंने उनके साथ एक महीने रहकर खुद अपने हाथों से खेती करके सीखने का मन बनाया। कुछ व्यक्तिगत कारणों से उस समय मैं उनके पास नहीं जा पाया। स्कूल से एक साल छुट्टी लेने के बाद इस काम को न करने का मेरे दिल अभी भी मलाल है। पर कुछ ऐसी परिस्थितियां बनीं जिनसे मैं खुद अपने गांव पर्रा में ही खेती के बारे में कुछ सीख पाया।

हमारे पड़ोसी खानडोलकर एक कृषक परिवार हैं और बारिश के मौसम में उनका पूरा परिवार खेती करता है। वे अन्य किसानों के लिए जुताई का काम भी करते हैं। इसके लिए उनके बड़े बेटे गुरू के पास एक बैलों की हष्ट-पुष्ट जोड़ी भी है। गुरू हमारे घर में कुछ राज-मिस्त्री का काम कर रहा था, जब मैंने उसे अपनी छुट्टी और किसानी करने की इच्छा के बारे में बताया। उसने सहजता से मझसे पूछा कि क्या मैं उसके साथ खेत जुताई के लिए आऊंगा। उसका प्रस्ताव मैंने तुरन्त स्वीकार किया। इससे गुरू को कुछ आश्चर्य अवश्य हुआ होगा। अगले दिन सुबह मुझे जल्दी जगाया गया और फिर हम दोनों खेतों की ओर चले। यह खेत हमारे घरों के पास ही थे।

दूर से शायद हल को पकड़ना आसान लगे पर दरअसल यह बहुत कुशलता और मेहतन का काम है। जुताई करते समय हल को हमेशा बीच में रखना पड़ता है जिससे बैलों के खुरों को नुकसान न पहुंचे। हत्थे पर सही मात्रा में दबाव डालना पड़ता है जिससे कि हल जमीन की न तो बहुत गहराई से और न ही

बहुत छिछली जुताई करे। साथ में लगातार बैलों को मोड़ने का और हल को उठाने का भी ध्यान रखना पड़ता है जिससे कि मेढ़ न टूटे। सबसे महत्वपूर्ण बात है कि बैल अपने मालिक को पहचानें, नहीं वो उसका आदेश नहीं मानेंगे।

बैल, मेरे मित्र गुरू को ता अच्छी तरह पहचानते थे पर मैं उनके लिए बिल्कुल अनजान था। इसलिए गुरू के आदेशानुसार मैं लगातार 'हिररी-हिररी' चिल्लाता था। इन आवाजों से बैल आगे बढ़ते हैं। मेरे चिल्लाने से शायद वो धीरे-धीरे मेरी आवाज को पहचानने भी लगें? गुरू के साथ मैं 15 दिनों तक खतों पर गया पर उसने मुझे कभी भी हल को अकेले चलाने नहीं दिया। सही संतुलन हासिल करना मेरे लिए कठिन था और मेरी अनुभवहीनता से अगर बैलों को चोट आ जाती तो गुरू को उन्हें कम-से-कम पंद्रह का आराम देना पड़ता जो उसे बहुत मंहगा पड़ता।

जुताई के बाद जमीन में बीज बोने के लिए खेत को समतल बनाया जाता है। यह कार्य भी बैलों की मदद से किया जाता है। इसमें बैल एक 'वी' आकार के लकड़ी के लम्बे पटरे को पूरे खेत पर खींचते हैं। इस काम का अकेले करने की मुझे अनुमति मिली और उसे करने में मुझे बेहद मजा आया। इसमें मुझे सिर्फ लकड़ी के पटरे पर खड़ा रहना था। बैल उसे खींच रहे थे और मैं बस मुफ्त की सैर कर रहा था!

मैंने खेतों में बीज बोने और खाद डालने की कोशिश भी की। जुताई के बीच समय बिताने के लिए मैंने निंदाई भी की। जुताई के दौरान कई दिनों तक बहुत तेज बारिश हुई। बारिश में, अन्य किसानों के साथ खेतों पर काम करने में मुझे बहुत मजा आया। जुताई खत्म होने पर खेत का मालिक सभी लोगों को रोटी के साथ गर्म चाय, या फिर पाव-भाजी खिलाता था।

मुझे साफ याद है कि मिट्टी से सना, अन्य मजदूरों के साथ मुझे बैठा देख खेतों के मालिकों को बहुत ताज्जुब हुआ। क्योंकि मैं उसी गांव का था इसलिए वे सभी मुझे पहचाते थे। एक महिला को लगा कि मैंने मजाक में अपनी हुलिया को उस तरह बनाया था। उन्होंने मुझे डांटा और कहा कि वो मां से मेरी शिकायत करेंगी। उन्होंनें कहा कि इतवार वाले दिन मुझे खेतों की बजाए चर्च में प्रार्थना के लिए जाना चाहिए था!

खेती का यह असली अनुभव मेरे लिए बहुत अच्छा रहा और वो मुझे हमेशा याद रहेगा। तब मैंने 20 खेतों की जुताई में गुरू की सहायता की। आज भी जब बारिश का मौसम आता है तो मुझे उस अनुभव की याद करके अपार खुशी मिलती है।

अध्याय ३:

पौधों का उत्सव

बारिश में गोवा के सामान्य लोगों का पौधों के प्रति अपार प्रेम पौधों की प्रदर्शनियों और उत्सवों में प्रस्फुटित होता है। मैं अपने घर के पास स्थित सैलिगाव और सायोलिम दो गांवों में हुए पौधों के उत्सवों का अनुभव आपको बताना चाहूंगा। पहले गांव में मैं महज एक दर्शक था पर दूसरी जगह मैंने काफी सक्रिय रोल निभाया।

सैलिगाव

पहली जुलाई को रविवार का दिन था। बारिश का मौसम होने के बावजूद आज बादल नहीं थे और सूर्य तेजो से चमक रहा था। मैं 20 मिनट में साइकिल पर सैलिगाव के प्रसिद्ध स्कूल *लूअरडिस कान्वेंट* में पहुंचा। इसी स्कूल में पौधों की प्रदर्शनी लगी थी। मुझे वहां पहुंचते हुए साढ़े दस बज गए। तब तक प्रदर्शनी का उद्घाटन हो चुका था और सभी लोग अंदर के मुख्य हांल में पौधों को देखने को उत्सुक थे। मैंने भी वही किया।

मुख्य हांल बहुत बड़ा था। वहां पर बोच में गमलों में पौधे सजे थे। कई पौधे बिक्री के लिए भी थे। यह गमले अलग-अलग लोग लाए थे और अधिकतर गमलों के पास उनके मालिकों का नाम लिखा था। कैक्टस के पौधे मेज पर हाल के एक कोने में रखे थे, और पुरुस्कृत पौधे एक अन्य मेज पर सजे थे। मैंने देखा कि प्रथम पुरुस्कार उस कलाकृति को मिला था जिसमें फूलों को गुलदस्ते जैसे एक पुराने पेंट किए हुए स्कूटर-टायर में सजाया गया था। यह बड़ा अनूठा मॉडल था। दो बहुत ही आकर्षक और अनूठे कैक्टस के पौधे थे। एक नीचे से पतला और हरा था और ऊपर से चमकीला लाल था। दूसरा रुई की गेंद जैसा दिखता था।

मुख्य हांल के अलावा कुछ कक्षाओं में भी पौधे और बिक्री के लिए अन्य चीजें रखी गई थीं। इनमें कुछ भोजन के पौधे - जैसे धनिया और नारियल के बीज थे। साथ में घर के अंदर रखने वाले सजावटी पौधे - *मनी-प्लांट*, बेलें आदि भी थीं। उनके साथ में बागवानी के औजार - औषधी छिड़कने के पम्प, कैंची, बीज और जैविक-खाद भी थी।

फिर एक घोषणा हुई कि 11 बजे श्री फ्रांसिस बोरजिस 'जैविक-खेती' पर एक भाषण देंगे। वैसे तो फ्रांसिस बोरजिस एक कालेज में पढ़ाते हैं, पर वो खेती की अपार जानकारी के लिए ज्यादा मशहूर हैं। वो खुद 'जैविक-खेती' करते हैं और उनके फार्म का नाम है 'अपूरभाई'। वो गोवा के अखबार '*वीकएंडर*' में एक साप्ताहिक कालम भी लिखते थे। पिताजी ने पहले ही श्री बोरजिस के बारे में मुझे बताया था, इसलिए मैं उनकी बातें सुनने को उत्सुक था।

उनका भाषण रासायनिक कीटनाशक और केमिकल खाद के उपयोग और उनसे हुई हानि क बारे में था। कुछ सालों से इनका दुनिया भर में प्रचलन बढ़ा था। उन्हांने जोर देकर कहा कि दुनिया को दुबारा 'जैविक-खेती' शुरू करनी चाहिए क्योंकि लम्बे अर्से में वही खेती करने का एकमात्र सार्थक तरीका था। अपने भाषण में उन्होंने केंचुओं को किसानों का परम मित्र बताया।

भाषण के बाद लोगों ने कई प्रश्न पूछे। कई प्रश्न घर में बागबानो करते समय आई दिक्कतों से सम्बंधित थे। उत्तर में श्री बोरजिस ने कई करने योग्य नुस्खे सुझाए जिन्हें उन्होंने खुद आजमाया था। मिसाल

के लिए प्रश्न 'पपीते का पेड़ फूलने के बाद मर क्यों जाता है?' के जवाब में उन्होंने जमीन पर पेड़ के तने के पास मिट्टी चढ़ाने को कहा जिससे वहां पानी इकट्ठा न हो। पानी के ठहरने से पेड़ की जड़ सड़ जाती थी। इस संदर्भ में उन्होंने एक दवाई का भी जिक्र किया जिसे उन्होंने और उनके मित्रों ने इजाद किया था। इस दवाई के छिड़काव से पपीते में लगने वाली बीमारियां बहुत कम हो जाती हैं। इस दवा को वो '*पपीते की दवा*' के नाम से बेंचते थे। दोपहर को भाषण खत्म होने के बाद मैं घर गया।

सायोलिम

सैलिगाव में हुए इस उत्सव से मुझे कुछ अंदाज हो गया था कि अगले पौधों के उत्सव में मुझे क्या देखने को मिलेगा। अगला उत्सव सायोलिम में था। गोवा के जाने-माने कार्टूनिस्ट एलेक्स के निमंत्रण के बाद मैंने उत्सव में सक्रिय भाग लिया। सायोलिम पौधों के उत्सव का नाम '*ग्रीन हेरिटेज*' था और एलेक्स उसके अगुवा थे। कुछ साल पहले एलेक्स और उनके मित्रों ने '*ग्रीन हेरिटेज*' की शुरुआत की थी।

11 अगस्त 1995 को मैं सुबह तड़के उठा और साइकिल पर सवार होकर सायोलिम की ओर चला। सायोलिम मेरे गांव पर्रा की पहाड़ी के पार बसा एक सुंदर गांव है। समय से बहुत पहले ही मैं एलेक्स के घर के सामने पहुंचा। एलेक्स और उनकी पत्नी टेक्ला, दोपहर के भोजन के वक्त ही घर पहंचे। भोजन के बाद मैं एलेक्स की कायनेटिक-हौंडा पर पीछे बैठा और फिर हम दोनों ने प्रदर्शनी में हिस्सा लेने वाले सभी प्रतिभागियों के घर का दौरा किया। हमने उनसे कहा कि अगले दिन वो प्रदर्शनो की चीजों को एकदम तैयार रखें जिससे हम उन्हें प्रदर्शनी स्थल पर ले जा सकें।

सायोलिम पर्व में एलेक्स की पौधे ढोने में मदद करते हुए।

12 तारीख की सुबह को मैंने एलेक्स को बड़बड़ाते हुए सुना। 'चलो भाई, जल्दी करो!' वो चिल्ला रहा था। वो मेरे माता-पिता का कालेज का दोस्त थे और बहुत ही मजाकिया किस्म का आदमी थे। उसकी संगति में आप हमेशा हंसते ही रहते।

हमें सूची के अनुसार सभी प्रतिभागियों के घरों से गमले आदि इकट्ठे करके प्रदर्शनी स्थल तक पहुंचाने थे। टेम्पो ठीक साढ़े नौ बजे आई। हमने टेम्पो के फर्श पर घास-फूस बिछाई जिससे कि रखते समय गमले टूटे नहीं। हमें बहुत सारे घरों में जाना था। हर घर से पौधे इकट्ठे करते समय हम उन पर एक लेबिल लगाते और उसे एक नम्बर देते, जिससे कि बाद में हम सही गमलों को उनके मालिकों को वापस कर सकें। कई घरों में बेहद खौफनाक कुत्ते थे। वहां हमें काफी सावधानी बरतनी पड़ी नही तो कुत्ते पौधों को नोच डालते।

टेम्पो पूरी भरने के बाद हम प्रदर्शनी स्थल यानि स्कूल लौटते और वहां टेम्पो को खाली कर सभी पौधों को सम्भाल कर रखते। फिर हम अपने मुहिम पर दुबारा निकलते। हर बार हमें नए लोगों, नए घरों और नए बागों के दर्शन होते। एक ट्रिप में हम मशहूर पॉप-सिंगर रेमो के घर भी गए। रेमो की मां प्रदर्शनी में भाग ले रही थीं।

सूची के अनुसार हरेक घर से पौधे एकत्रित करने में हमें पूरा दिन लगा और इसके लिए हमें गांव के तीन चक्कर लगाने पड़े। फिर हमने स्कूल में लकड़ी की बेन्चों पर गमलों को सजाया। कई लोगों ने इस उत्सव में सहयोग दिया। मिग्यूल ब्रिगैंजा भारत सरकार के एग्रीकल्चरल अफसर थे और वो उस समय पुराने गोवा में स्थित इंडियन काउंसिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च में काम कर रहे थे। फ्रांसिस बोरजिस वही व्यक्ति थे जिन्होंने सालिगाओ उत्सव में 'जैविक-खेती' पर भाषण दिया था। इन दोनों हस्तियों के साथ गांव के कई युवकों और युवतियों ने उत्सव को सफल बनाने में हाथ बंटाया। अगली सुबह उत्सव का शुभारंभ होने वाला था। तेरह तारीख को काम समाप्त होने तक रात का एक बज गया। सुबह उठकर हमें बाकी कामों को पूरा करना था। उत्सव सुबह 9 बजे शुरू होने वाला था।

'*ग्रीन हेरिटेज*' पौधों का उत्सव, कुल तीन दिनों तक चला। एग्रीकल्चरल विभाग के श्री पी के देसाई ने 11 बजे उत्सव का शुभारंभ किया। उन्होंने लाल रिबन को काटने की बजाए दो दरवाजों के बोच एक बेल को काटा। उन्होंने एक पुस्तक '*ग्रीन एँड-3 - टोटल गार्डनिंग*' का भी विमोचन किया। इस पुस्तक को '*ग्रीन हेरिटेज*' ने प्रकाशित किया था। पुस्तक को कागज की बजाए एक बड़े '*मनी-प्लांट*' के पत्ते में लपेटा गया जो मुझे बहुत सटीक लगा। उद्घाटन और पुस्तक विमोचन के बाद मुख्य अतिथि ने अपना भाषण दिया। उसके बाद एलेक्स ने एक बहुत मजेदार भाषण दिया।

'*ग्रीन हेरिटेज*' कार्यक्रम के कई पहलू हैं। पहला है प्रदर्शनी का आयोजन। दूसरा है विभिन्न विषयों पर लेक्चरों का आयोजन। तीसरा है दुनिया को हरित बनाने के लिए विभिन्न स्पर्धाओं का आयोजन।

स्कूल का मुख्य हॉल बहुत बड़ा था। उसमें गमलों को बहुत करीने से सजाया गया था जिससे दर्शक पौधों को चारों ओर से निहार सकें। कुल मिलाकर करीब 200 गमले थे। उनमें मिर्ची और बैंगन जैसे सब्जियों के पौधे भी थे। साथ में फूलों के पाधे, कैक्टस, बेलें, फर्न और बरगद एवं पीपल के बौन्जाई भी थे। साथ में नींबू, संतरे और चीकू आराम से गमलों में फल-फूल रहे थे।

हॉल मे स्टेज पर स्पर्धा में भाग लेने वाली कृतियों को रखा गया था जिसमें सब्जियों को तराश कर बनाए मॉडल्स, विभिन्न स्कूलां में छात्रों द्वारा कागज के बनाए फूल रखे थे।

हॉल के बाहर दो गलियारे थे। एक गलियारे में सरकारी पौधशाला स्थित थी जहां नीम, आम, नारियल, चीकू, इमली और अन्य किस्मों के पौधे बिक्री के लिए उपलब्ध थे। दूसरे गलियारे में बिक्री के लिए कुछ अन्य चीजों को रखा गया था। वहां एक छोटी मेज पर '*टोटल गारडनिंग*' नामक पुस्तक की प्रतियां रखीं थीं। साथ में '*ग्रीन हेरिटेज*' द्वारा पिछले उत्सव में प्रकाशित दो अन्य पुस्तकें भी रखीं थीं। एक अन्य मेज पर नारियल से बनी तमाम कलाकृतियां रखीं थीं - जिसमें हाथी का सिर, टेबिल लैम्प और खोपड़ी आदि शामिल थे। उसके पास ही वैकल्पिक पुस्तकों के प्रकाशक 'द *अदर इंडिया बुक स्टोर*' ने बड़ी तादाद में पर्यावरण से सम्बंधित पुस्तकों की प्रदर्शनी लगाई थी। आगे जाकर '*गार्डन-ग्लोरी*' नाम की स्टाल थी जहां बागवानी के तमाम उपकरण बिक्री के लिए सजे थे। उनमें घास तराशने के लॉन-मोअर, कटर, कीटनाशक स्प्रेयर आदि शामिल थे। *अपूरभाई* स्टाल में विभिन्न प्रकार की जैविक खादें, हड्डियों का चूरा और तमाम किस्म के सजावटी पौधे, पाम्स और बेलें बिक्री के लिए रखे थे। साथ में अचार, फलों के रस और पपीते के पौधां के लिए दवाईयां भी उपलब्ध थीं।

गलियारे के अंत में एक कैन्टीन थी। हमें जब भी भूख-प्यास लगती हम वहां जाकर नाश्ता करते और ठंडा पेय पीते। मुझे कैन्टीन बिल की बिल्कुल फिक्र नहीं थी क्योंकि वो '*ग्रीन हेरिटेज*' ग्रुप की तरफ से मुफ्त था।

कैन्टीन के पास एक छोटी मेज, एक ब्लैकबोर्ड, चॉक और बैठने के लिए कुछ बेन्चं थीं। यह वो स्थान था जहां लोगों के भाषण होते थे। '*ग्रीन हेरिटेज*' कार्यक्रम के तहत कुल चार भाषण हुए - सब्जियां तराशने, जैम और शरबत बनान, वाईन बनाने और कैक्टस विषयों पर।

मैंने कैक्टस के विषय का भाषण सुना। भाषणकर्ता अपने फ्लैट में कैक्टस उगाता था। उनका भाषण बहुत ही रोचक और व्यावहारिक जानकारी से भरा था। उससे लोगों को खुद कैक्टस उगाने में मदद मिलती। मैंने कभी भी कैक्टस नहीं उगाए थे फिर भी मैंने भाषण के विस्तृत नोट्स लिए। नोट्स देख मेरी मां बहुत प्रसन्न हुईं क्योंकि उससे उन्हें घर के कैक्टस-गार्डन को बेहतर बनाने में मदद मिली। मेरे लिए यह भाषण बहुत शिक्षाप्रद रहा।

उत्सव के तीनों दिन मुझे छोटे-मोटे काम सौंपे गए। इनमें पौधों की देखरेख और उनमें पानी डालना, गमलों और फर्नीचर को इधर-उधर ले जाना और '*ग्रीन हेरिटेज*' की किताबें बेंचने का काम शामिल था। एलेक्स के साथ काम करके इन सबमें मुझे बहुत मजा आया।

आखिरी दिन पुरुस्कार वितरण समारोह था। '*ग्रीन हेरिटेज*' उत्सव में मदद करने के लिए मुझे एक विशेष सर्टिफिकेट मिला। उत्सव समाप्त होने के बाद आयोजकों को उसके सफलतापूर्वक उत्सव आयोजन की खुशी मिली। मुझे उसमें सहभागी होने की बहुत खुशी थी। पर अभी जश्न खत्म नहीं हुआ था। रात को हम सबने मिलकर एक भोज किया जो सुबह भोर तक चला। हम बहुत कम ही सो पाए क्योंकि हम पर पौधों के मालिकों को उनकी अमानत को सौंपने की जिम्मेदारी थी। यह काम हमने सुबह ही खत्म किया।

'*ग्रीन हेरिटेज*' उत्सव में सहभागी होने और एलेक्स के घर पर रहने में मुझे बड़ा मजा आया। उत्सव खत्म होने पर मैं उदास हुआ। मैंने अगले दिन एलेक्स के घर पर ही आराम किया और फिर 18 तारीख को अपने घर गया।

फील्ड नोट्सः

घर में कैक्टस उगाना

सजावटी कैक्टसों को घरों में उगाते हुए हमें हमेशा यह याद रखना चाहिए कि कैक्टस रेगिस्तानी पौधे हैं। इससे इन पौधों को जिंदा रखने में मदद मिलती है। कभी भी पूरे कैक्टस के ऊपर पानी नहीं छिड़कें क्योंकि इससे वे सड़ने लगते हैं। कैक्टस के पूरे पौधे पर एक पतली मोम की परत होती है। यह परत कैक्टस की सतह से पानी को भाप बनकर उड़ने से रोकती है। पानी छिड़कने से मोम की यह परत घुल जाती है और उससे कैक्टस सड़ने लगते हां। कैक्टस को कितना पानी दें यह मौसम और कक्टस किस स्थान पर है उस पर निर्भर करेगा। गर्मी में कैक्टस को हरेक चौथे दिन ही पानी दें और बारिश के मौसम में हरेक पंद्रह दिनों में।

कैक्टसों को दिन में कम-से-कम ढाई घंटे के लिए सूर्य का प्रकाश मिलना जरूरी है। पूरे दिन उन्हें चिलचिलाती धूप में रखने से उन पर झुर्रियां पड़ सकती हैं। कैक्टस, अन्य पौधों से भिन्न होते हैं। कैक्टस दिन में कार्बन-डाईआक्साइड पैदा करते हैं और रात में ऑक्सीजन। कमरों में रखने के लिए कैक्टस आदर्श पौधे हैं क्योंकि वो रात को हवा स्वच्छ करते हैं।

कैक्टस अच्छी तरह बढ़े इसके लिए उपयुक्त गमले का चयन बहुत महत्वपूर्ण है। गमला हमेशा कैक्टस से कुछ छोटा होना चाहिए - तभी कैक्टस जिंदा रहने के लिए संघष करता है और उसका अच्छा विकास होता है। अगर गमला बहुत बड़ा होगा तो पौधे संघर्ष नहीं करेगा और उसके मरने की सम्भावना बढ़ेगी। कैक्टस कई मायनों में इंसानों जैसे होते हैं। जब वो पीड़ित होते हैं तभी उनका विकास होता है। कैक्टस में वृद्धि के आसार नहीं दिखने पड़ उसमें पानी डालना तुरन्त बंद करना चाहिए। और जब पौधे में विकास के लक्षण नजर आएं तभी उसे पानी देना चाहिए।

कैक्टस के गमले में सबसे नीचे टूटी हुई ईंटों के टुकड़े और उनके ऊपर लकड़ी का कोयला रखें। कोयले के ऊपर रेत और सबसे ऊपर बजरी रखें कैक्टस के लिए सड़े पत्तों की खाद ही सबसे उपयुक्त होती है।

कैक्टस की कलम लगाना एकदम सरल है। इसके लिए कक्टस के एक छोटे टुकड़े को सेलोटेप द्वारा '*कलम*' वाले पौधे से चिपकाएं। टुकड़ा जितना अधिक छोटा होगा कलम को लगाना उतना ही आसान होगा। कैक्टस को दुबारा उगाना और उसकी पौध तैयार करना भी बहुत आसान है। इसके लिए कैक्टस के एक टुकड़े को काटें और उसे कुछ दिनों के लिए सुखाएं और फिर उसे कैक्टस की मिट्टी वाले गमले में रख दें। उसमें स्वत: जड़ें निकल आएंगी।

कैक्टस और उन जैसे अन्य पौधों के बीच अंतर समझना काफी आसान है। हरेक कैक्टस के कांटे के नीचे पतले बाल होते हैं। असल में कैक्टस में पत्तियों ने बदल कर कांटों का रूप ले लिया है। कांटों से पानी के वाष्पीकरण की दर बहुत कम हो जाती है। अगर कभी आपकी त्वचा में कैक्टस के कांटें चुभ जाएं तो उस भाग पर सेलोटेप चिपकाएं और हल्के से उसे खींचें। सेलोटेप पर सभी कांटें चिपककर आसानी से निकल जाएंगे।

अध्याय ४

मशरूम्स के बारे में सीखना

सायोलिम के *'ग्रीन हेरिटेज'* उत्सव में भाग लेने से मुझे एक और फायदा हुआ। वहां मेरी मुलाकात श्री मिगुअल ब्रिगैंजा से हुई जो गोवा सरकार में एग्रीकल्चर अधिकारी थे। उनसे मुझे पता चला कि इंडियन काउंसिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च (*आईसीएआर*) इला फार्म्स, पुराने गोवा में अगस्त के अंतिम सप्ताह में दो दिनों का मशरूम प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित कर रहा था।

'ग्रीन हेरिटेज' उत्सव के बाद मैं अपने-आप इधर-उधर जाने लगा। जबकि कोर्स गोवा में ही था फिर भी मुझे इला फार्म्स के बारे में कुछ पता नहीं था। न ही उसमें शामिल होने वाले किसी व्यक्ति को जानता था।

श्री ब्रिगैंजा ने मुझे बताया था कि सहभागियों के लिए कैम्पस में मुफ्त में रहने की सुविधा उपलब्ध थी। पर कैम्पस में रहना अनिवार्य नहीं था। मुझे लगा था कि सारे सहभागी कैम्पस में ही रहेंगे क्योंकि देर शाम के समय गोवा में बस मिलना दुश्वार होता है। मुझे तो घर से दूर रहने में ही मजा आता था, इसलिए मैंने अपने माता-पिता से इला फार्म्स के कैम्पस पर रहने की अनुमति मांगी जो उन्होंने तुरन्त दे दी। मेरा सोच एकदम गलत साबित हुआ क्योंकि कैम्पस पर रहने वाला मैं अकेला सहभागी निकला!

24 अगस्त की सुबह को पिताजी से निर्देश लेकर मैं प्रशिक्षण शिविर के लिए घर से 22 किलोमीटर दूर पुराने गोवा के लिए निकला। मैं वहां बिना किसी दिक्कत के पहुंच गया। *आईसीएआर*, इला फार्म्स में ही स्थित है। वहां गेट पर रखे रजिस्टर में मुझे अपना नाम दर्ज करना पड़ा। आगे दायीं ओर की सड़क पर *आईसीएआर* का दफ्तर था। सड़क के दोनों ओर नारियल, अमरूद और चीकू के पेड़ थे। फिर आग जाकर एक छोटा सा दफ्तर था जो प्रयोगशाला लग रहा था। उसमें मशरूम्स की कई प्रजातियां संरक्षित थीं। मैंने वहां एक आदमी से कार्स के बारे में पूछा और उसने मुझे किसान प्रशिक्षण केंद्र की ओर भेजा।

श्री मिगुअल ब्रिगैंजा और श्री ऑस्कर, इस कोर्स के आयोजक थे। वे कुछ अन्य सहभागियों के साथ वहां पहले से ही मौजूद थे। सबसे पहले हमें कोर्स के पंजीकरण के लिए कुछ कागज भरने पड़े। फिर हमें बताया गया कि हरेक सहभागी को कोर्स खत्म करने पर 500 रूपए मिलेंगे। यह सुन कर मुझे बेहद आश्चर्य हुआ। यह राशि सहभागियों को आने-जाने और भोजन के खर्च के लिए बोनस के रूप में दी जाती थी।

मैं देखा कि बाकी सभी तेंतीस सहभागी मुझ से उम्र में बड़े थे। क्योंकि उनमें से ज्यादातर किसान थे, इसलिए वक्ताओं ने कुछ भाषण कोंकणी और कुछ अंग्रेजी में दिए। अंग्रेजी भाषणों का श्री ऑस्कर ने कोंकणी में अनुवाद किया।

श्री मिगुअल ब्रिगैंजा मशरूम्स पर भाषण देते हुए।

कोर्स में भाषणों के साथ-साथ प्रैक्टिकल डेमो भी थे। पहला भाषण, पतले-दुबले लम्बे बाल वाले व्यक्ति नंदकुमार कामत ने दिया।

उन्होंने पहले प्रश्न पूछा: आप मशरूम्स क्यों उगाना चाहते हैं? घर के बगीचे में खुद के खाने के लिए, या फिर उन्हें निर्यात करने के लिए? उनके अनुसार किसान अपने उद्देश्यों के अनुसार मशरूम्स की किस्म और तादाद तय कर सकते हैं। उन्होंने अनेकों मशरूम्स की किस्मों के स्लाईड्स दिखाए - जिसमें जहरीले और खाने वाले दोनों किस्म के मशरूम्स शामिल थे।

उनका भाषण लम्बा, पर रोचक था। दोपहर के खाने के समय के बाद ही उनका लेक्चर खत्म हुआ और उसके बाद सभी सहभागी कैंटीन गए जहां मछली के झोल और चावल की स्वादिष्ट थाली मात्र छह रूपयों में उपलब्ध थी।

दूसरा सत्र दोपहर तीन बजे शुरू हुआ। इस सत्र में दो लेक्चर थे। पहला *आईसीएआर* के एक वैज्ञानिक ने दिया जिसमें उन्होंने मशरूम्स को लगने वाले कीड़ों और बीमारियों पर प्रकाश डाला। उन्होंने कीड़ों, फफूंद, बैक्टीरिया और खराब प्रबंधन की समस्याओं का उल्लेख किया।

उन्होंने जिन उपचारों का उल्लेख किया उसमें रासायनिक कीटनाशकों के छिड़कने पर ही जोर था। उनमें लिनडेन, मैलाथियौन, डिलोरोज, कॉपर सल्फेट और सिटरोनोला तेल शामिल थे। साथ में उन्होंने बीमारियों को प्रभावशाली तरीके से रोकने के लिए उचित प्रबंधन और सफाई पर भी जोर दिया। क्योंकि किसी भी सहभागी ने पहले कभी मशरूम्स उगाए नहीं थे इसलिए सत्र के बाद किसी ने भी कोई सवाल नहीं पूछे।

उसके बाद के सत्र में एक महिला ने हमें मशरूम्स में मौजूद पौष्टिक तत्वों के बारे में बताया। आधे घंटे तक उन्होंने मशरूम्स में कम-तेल और कम-शक्कर होने की बात पर बल दिया। मशरूम खाने से जोड़ों का दर्द, दांतों का सड़ना और मसूड़ों से खून निकलना बंद होता है। उन्हें सुनकर मुझे लगा कि अब हर भोजन में मुझे मशरूम ही खाने चाहिए।

पहले दिन का कार्यक्रम शाम छह बजे समाप्त हुआ। तब मुझे मालूम पड़ा कि बाकी सभी सहभागी अपने-अपने घर जा रहे थे और मैं ही अकेले होस्टल में रहने वाला था। मैंने वहीं रहने का निश्चय किया क्योंकि आयोजकों ने वहां रुकने वालों के लिए समुचित प्रबंध किया था।

उस शाम और अगले दिन सुबह मैंने *आईसीएआर* के कैम्पस में घूमा। वहां पर एक छोटी पौधशाला, फूलों का बगीचा, मछलियों का तालाब, खरगोश और मुर्गियों के दबड़े, गौशाला और धान के बड़े खेत थे। वहां एक फलों का बाग भी थे जिसमें विभिन्न प्रकार के आम, चीकू और नारियल के पेड़ लगे थे।

इस सब हरियाली के बीच रिहायशी इमारतें भी थीं। उनके बीच में खाने की कैन्टीन थी। मैंने एक चार-मंजिली इमारत पर पहली मंजले के एक कमरे में अपना सामान रखा। इस छोटे कमरे में दो पलंग, कुछ लाकर्स, मेज और दर्पण था। क्योंकि रात को और कोई सहभागी वहां नहीं था इसलिए चौकीदार को मेरे साथ रहने को कहा गया। कैन्टीन में सस्ता और अच्छा भोजन मिलता था। मैं अन्य सहभागियों के साथ वहां दोपहर का खाना खा चुका था। रात के लिए भी वहां बावर्ची ने मेरे लिए मछली का झोल और चावल पकाए। अगली सुबह मैंने मात्र तीन रुपए में पेट भरके रोटी-सब्जी का नाश्ता किया। उस रात कुछ काम न होने के कारण चौकीदार और मैं कैम्पस के पीछे की पहाड़ी पर सैर के लिए गए। वहां पर एक मंदिर था।

अगले पूरे दिन का सत्र श्री आस्कर ने लिया। उनके सत्र मशरूम उगाने से सम्बंधित अनेक व्यावहारिक जानकारियों से भरे थे। वे कभी स्लाइड्स दिखाते तो कभी सजीव डेमो देते। वो हमें टीकाकरण,

टिश्यू-कल्चर की प्रयोगशाला, बीजों का भंडार और पराबैंगनी किरणों वाला कमरा भी दिखाने ले गए। हम लोग लेक्चर-हाल और प्रयोगशाला के बीच लगातार घूमते रहे। पुआल को किस प्रकार उबाला जाए और मशरूम्स के बोरों को कैसे भरा जाए यह सब हमने देखा। इसमें सभी ने सक्रियता से भाग लिया और अपने हाथों से खुद बोरे भरे। सभी सहभागियों को श्री आस्कर के सत्र में बहुत मजा आया। काश उनका सत्र और लम्बा होता!

किसी भी सहभागी को एक्सपोर्ट (निर्यात) के लिए मशरूम्स उगाने का कोई अनुभव नहीं था। इसलिए श्री आस्कर ने दो किसानों को आमंत्रित किया। वे स्थानीय बाजार और एक्सपोर्ट के लिए मशरूम्स उगाते थे। वे एक साल से इस धंधे में लगे थे और मांग के अनुसार वे ताजे अथवा सूखे मशरूम्स बेंचते थे। उन्होंने अपने व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित हमें बहुत व्यावहारिक जानकारी दी। उन्होंने बताया कि वे रोज पुआल के दो सौ बोरे भरते थे। उन्होंने काम के दौरान आई समस्याओं - चूहों और बीमारियों के बारे में भी हमें बताया। शुरुआत में मशरूम्स बेंचने में आई दिक्कतों का भी उन्होंने उल्लेख किया।

किसान प्रशिक्षण केंद्र के निदेशक के भाषण के बाद कार्यक्रम का अंत हुआ। उन्होंने हमें अपने केंद्र और *आईसीएआर* के बारे में अतिरिक्त जानकारी दी।

कुछ सहभागी अपने साथ बोतलों में मशरूम्स के अंडे भरकर ले गए। मैंने ऐसा इसलिए नहीं किया क्योंकि मैं अगले कुछ महीनों के लिए गोवा से बाहर जाने की सोच रहा था।

मैंने खुद कभी मशरूम्स नहीं उगाए परन्तु मैंने उनके बारे में बहुत कुछ सीखा और कई मित्र बनाए।

फील्ड नोट्सः

मशरूम्स कैसे उगाए जाएं?

खाने योग्य मशरूम्स कई किस्म के होते हैं जिनमें *औयिस्टर* और *बटन* मशरूम्स लोगों और किसानों में सबसे लोकप्रिय हैं।

मशरूम्स को बच्चों समेत कोई भी खा सकता है क्योंकि वे जल्दी - दो-तीन घंटों में ही पच जाते हैं और उनका पौष्टिक तत्व खून में जब्ज हो जाते हं। मशरूम्स में लोहा, विटामिन्स, कैल्शियम और प्रोटीन होते हैं। वो गर्भवती महिलाओं, मधुमेह और उच्च रक्तचाप के मरीजों के लिए लाभप्रद होते हैं। मशरूम्स में औषधीय गुण भी होते हैं और उनसे दिल, जिगर और रक्त की बीमारियों जैसे रक्तवसा में लाभ मिलता है।

मशरूम्स के धंधे में कम पूंजी लगाकर नफा कमाया जा सकता है। पर उसके लिए मशरूम्स उगाने की तकनीक और तरीकों का पूरी तरह ध्यान से पालन करना बहुत जरूरी होगा। मशरूम्स उगाने के लिए खेतों की जरूरत नहीं पड़ती। आप आसानी से अपने घर के अंदर ही मशरूम्स उगा सकते हैं।

मौसम: मशरूम्स उगाने के लिए तापमान 20-32 डिग्री सेल्सियस और नमी 35-70-प्रतिशत होनी चाहिए। हवा का संचार अच्छा होना चाहिए और हल्की रोशनी अथवा अंधेरा होना चाहिए। अधिक प्रकाश से मशरूम्स का रंग गहरा हो जाता है।

अगर कमरे का तापमान 32 डिग्री सेल्सियस से ऊंचा हो जाए तो कमरे में गीले बोरे लटकाकर तापमान कम करें। पर इसके लिए बोरों को पहले सैवलौन, फारमैलिन या डेटाल लगाकर कीटाणुमुक्त करें

जिससे कि फफूंद और बैक्टीरिया कमरे में प्रवेश नहीं कर पाएं। अगर तापमान 20-डिग्री सेल्सियस से नीचे गिर जाए तो फिर गर्मी पैदा करने के लिए छोटे कमरे में 200-वॉट का बल्व जलाएं।

अंडे: मशरूम्स को उनके अंडों या *'स्पान'* से उगाया जाता है। *'स्पान'* का रंग दूधिया होता है और उसमें मीठी खुशबू या कभी-कभी कोई सुगंध नहीं होती है। *'स्पान'* चारों ओर से सफेद और रुई जैसा दिखना चाहिए। अगर रंग पीला है तो उसका मतलब *'स्पान'* पुराना है। *'स्पान'* पर अगर और कोई रंग है तो वो किसी फफूंद की मिलावट का द्योतक है। *'स्पान'* अधिक-से-अधिक 18-20 दिन पुराना होना चाहिए।

'स्पान' को तैयार करने के लिए अच्छी गुणवत्ता का जोवार, गेहूं या चना चाहिए। सभी बीज लगभग एक साइज के होने चाहिए और उन्हें कीटों और बीमारियों से मुक्त होना चाहिए। अनाज को धोकर उसमें से खोखले बीजों को निकाल दें। फिर उसे एक घंटे तक उबालें जिससे कि वो आधा-पक जाए। उबालते समय अनाज में कीटों के नाश के लिए कुछ फारमैलिन या सैवलौन डालें। फिर अनाज को एक कीटाणुमुक्त मलमल के कपड़े पर फैलाकर उसमें कैल्शियम कारबोनेट मिलाएं। फिर उसे बोतलों में भरकर, रुई के साथ बोतलों में कार्क फिट करें। इन बोतलों को फिर एक पशर-कुकर में रखकर उबालें।

जहां कल्चर तैयार होता है उसे दिखाने के लिए हमें *'टिश्यू-कल्चर'* कमरे में ले जाया गया। यह कमरा सवा-दो मीटर ऊंचा और सवा मीटर लम्बा था। इसके लिए दो ट्यूबलाईट्स - एक पराबैंगनी और दूसरी साधारण ट्यूबलाईट का उपयोग किया जाता है। इसमें एक स्प्रिरिट लैम्प का इस्तेमाल भी होता है। *'टिश्यू-कल्चर'* की मदद से एक बोतल मदर *'स्पान'* से छह पीढ़ियां तैयार की जा सकती हैं। छह पीढ़ियों के बाद *'स्पान'* की शक्ति कम हो जाती है और फिर मशरूम्स की उपज कम हो जाती है।

आधार (सबस्ट्रैटम): मशरूम्स उगाने के लिए धान का पुआल मुख्य आधार है। पुआल में सेल्यूलोज और लिगनिन होता है जो मशरूम्स की वृद्धि के लिए अनिवार्य है। पर पुआल के साथ-साथ अन्य चीजों की भी जरूरत पड़ती है जैसे लकड़ी का बुरादा, बोरे, केले के पत्ते, आम की सूखी पत्तियां, नारियल के पत्ते, गन्ना, जंगली घासें, धान की भूसी आदि।

धान के पुआल को बहुत सावधानी से चुनना चाहिए। पुआल टूटने योग्य हो और उसका रंग पीला अथवा सुनहरा हो। पुआल छह महीने से अधिक पुराना नहीं हो। पुआल को कई दिनों तक धूप में सुखाकर उसे हवाबंद डिब्बों में रखकर अगला दो महीनों में प्रयोग करना चाहिए।

एक किलो तैयार पुआल में 4 प्रतिशत *'स्पान'* की मात्रा होनी चाहिए।

तरीका: पहले पुआल को तैयार करना चाहिए। उसके लिए पुआल को 3 से 7 सेंटीमीटर लम्बाई के टुकड़ों में काटें। फिर उसे कपड़े के थैले में भरकर पानी में 10 घंटे भिगोएं (1-किलो पुआल को 10-किलो पानी में)। यह सुनिश्चित करें कि पूरा पुआल पानी में भीगा हो और उसका कोई भी हिस्सा पानी से ऊपर न हो।

अगला चरण *'पैस्चराईजेशन'* का है। इसमें पानी का 80-85 डिग्री सेल्सियस पर उबालें। जब पानी खौलने लगे तो थैली के साथ पुआल को पूरी तरह उबलते पानी में डुबाएं। पुआल डालते ही पानी में उठते बुलबुले बंद हो जाएंगे और कुछ समय बाद फिर शुरू हो जाएंगे। बुलबुले दुबारा शुरू हाने के तीस मिनट बाद पआल को पानी में से निकालें। पुआल का सारा पानी निकालने के बाद उसे कमरे के तापमान पर ठंडे होने दें। फिर बाद में स्वच्छ सतह पर पुआल को फैला कर उसे दो घंटे के लिए सुखाएं।

पुआल में नमी की मात्रा 60-प्रतिशत से अधिक नहीं हो। पुआल में नमी की मात्रा का परीक्षण करने के लिए एक पुआल को अपनी ऊंगलियों से कस कर दबाएं। अगर उसमें से केवल एक बूंद पानी गिरे तो समझें कि पुआल में नमी ठीक है।

अब पुआल को भरने के लिए पोलीथीन के लम्बे थैले चाहिए। थैले 35-सेमी लम्बे और 25-सेमी चौड़े हों और हरेक का वनज 150-ग्राम हो। उपयोग से पहले थैलियों को डेटोल, सैवलौन या फार्मालीन में धोएं। चार डोरियों को एक सिरे पर बांधकर उन्हें थैली के आधार में रखें। डोरियों क मुक्त सिरे थैली के बाहर हों। अब थैली का भरें। पहले थैली के निचले हिस्से में 5-सेमी ऊंची पुआल की तह को रखकर उसे हल्के से तले की ओर दबाएं। फिर उसके ऊपर मशरूम का *'स्पान'* फैलाएं। फिर पुआल की 10-सेमी ऊंची तह रखें और उस पर भी मशरूम का *'स्पान'* फैलाएं। यह काम आप थैली के मुंह तक पहुंचने तक करें। अंत में 5-सेमी मोटी पुआल की तह फैलाएं और फिर उन चारों डोरियों से थैली के मुंह को कस कर बांधें। थैलियों को या तो फर्श पर रखें या फिर उन्हें कमरे की छत से लटकाएं। थैलियों लटकाने से उनके निचले हिस्से से मशरूम्स को आसानी से निकाला जा सकता है।

अगले दिन थैली में 30-35 छेद बनाएं। यह छेद एक कीटाणुविहीन सुई से बनाएं। इन थैलियों को 15 दिनों तक अंधेरे में ऐसे स्थान पर रखें जहां हवा का बहाव बहुत कम हो। फिर थैलियों को किसी दूसरे कमरे में ले जाएं। यहां उन्हें 4 घंटे हल्की रोशनी और हवा के बहाव में रखें। डेढ़ दिन के बाद पुआल पर दिन में तीन बार पानी छिड़कें। इसके लिए पाईप का मुंह ऊपर की ओर हो जिससे कि थैलियों पर पानी बारिश की बूंदों जैसे पड़े। उसके अगले दिन पिन के मत्थों जैसे छोटे-छोटे मशरूम्स बाहर निकलेंगे। उसके दो दिन बाद प्रे विकसित मशरूम्स तैयार होंगे। मशरूम्स को खींचकर नहीं निकालें नहीं तो उनके साथ-साथ पुआल भी बाहर निकल आएगा। इसलिए उन्हें या तो काटें या फिर मरोड़कर अलग करें। अगर पुआल सूखा है तो थैली को जल्दी से पानी में डुबाकर बाहर निकालं। नहीं पर उसपर लगातार पानी छिड़कें। मशरूम्स की अगली फसल एक हफ्ते बाद ही पैदा होगी। इस प्रक्रिया को चार बार दोहराया जा सकता है। उसके बाद दबारा नए सिरे से शुरुआत करनी होगी। इसका कारण है कि चार फसलों के बाद पुआल में बीमारियां लग जाती हैं।

कीट और बीमारियां: मशरूम्स को बहुत आसानी से कीट और बीमारियां लगती हैं इसलिए उनकी अच्छी देखभाल और उत्तम प्रबंधन आवश्यक है। *बटन* प्रजाति के मशरूम्स ज्यादा नाजुक होते हैं जबकि *ऑयिस्टर* प्रजाति के मशरूम्स बीमारियों को बेहतर सह पाते हैं।

कुछ कीड़े जो मशरूम्स पर हमला बोलते हैं - *स्केरिड फ्लाई, फोसिड फ्लाई* और *स्प्रिंग टेल्स* (जो टिड्डों जैसे होते हैं) और घुन। मशरूम्स को कीड़ों के हमले से बचाने के लिए यह जरूरी है कि थैलियों को जमीन से 1-फुट की ऊंचाई पर रखा जाए। कीड़ों से निजात पाने के लिए कमरे में गंधक भी जलाई जा सकती है। पानी में सिटरोनीला तेल मिलाकर उसे भी थैलियों पर छिड़का जा सकता है। कीड़े के हमले से बचने के लिए स्वच्छता के उच्चतम मानदंडों पर अमल करना बेहद आवश्यक है।

मशरूम्स की *बैक्टीरिया* और *नेमाटोड्स* से भी सुरक्षा करना पड़ती है। बहुत अधिक नमी में बैक्टीरिया पैदा होते हैं और यह सड़े भूरे धब्बों के रूप में दिखते हैं। इसके लिए यह जरूरी है कि लगातार नमी के स्तर पर निगरानी रखी जाए और उसे सही स्तर पर बरकरार रखा जाए। *नेमाटोड्स* से बचने के लिए पुआल को समय-समय पर बदलना चाहिए। छह महीने या एक साल से ज्यादा पुरानी पुआल को कभी

उपयोग नहीं करना चाहिए। पुआल का सावधानी से चयन करना करें और उपयोग से पहले उसे जीवाणुरहित बनाएं। अगर थैलियों पर बीमारी के लक्षण दिखें तो उन पर 100-ग्राम पोटैशियम परमैगनेट या फिर 20-मिली फारमैलिन छिड़कें।

अध्याय ५

केरल की यात्रा

अगस्त अब अंत हो रहा था और उसके साथ-साथ तेज बारिश भी खत्म हो रही थी। मैं गोवा के बाहर कई स्थानों की यात्रा करना चाहता था। अब मैं आत्मविश्वास के साथ अपने आप गोवा में कहीं भी आ-जा सकता था। गोवा में मैं वहां की जुबान में लोगों से आसानी से बातचीत कर सकता था। मैं उनसे पते पूछ सकता था, होटलों में खाना खरीद सकता था और पैसों का हिसाब-किताब रख सकता था। इसलिए अब मैं गोवा से बाहर जाने के लिए बेताब था।

गोवा से बाहर जाने का एक और मुख्य कारण था। मेरी पड़ोसी और मित्र बार-बार मुझ से पूछते कि मैं क्या कर रहा हूं? मैं कालेज क्यों नहीं जाता? इन सवालों से मैं तंग आ चुका था। उन्हें इस बात का कोई अंदाज नहीं था कि मैं अपनी मनमर्जी के कामों में व्यस्त था और उनमें मुझे बेहद आनंद आ रहा था। फिर भी लोग मुझ से बार-बार बेकार के सवाल पूछते रहते थे। मैं इन प्रश्नों से तंग आ गया था और उनसे बचने के लिए गोवा से बाहर जाना चाहता था।

बस तभी मेरे पिताजी को जैविक-खेती की एक मीटिंग के लिए कोट्टायम, केरल जाना पड़ा। बाद में व कई जैविक खेतों का दौरा भी करने वाले थे। उन्हें लगा कि अगर मैं भी उनके साथ चलूं तो बहुत अच्छा होगा। इस प्रकार मेरा केरल जाने का कार्यक्रम बना।

मैं अपने पिताजी के साथ 30 अगस्त 1995 को गोवा स निकला। पणजी बस-स्टैंड से बस सुबह छह बजे चली और उसी दिन शाम को चार बजे मैंगलोर पहुंची। रास्ते में हम कारवार, अंकोला, कुमता, होनावर, कुंदापुर और उडोपी शहरों से होकर गुजरे। (पिताजी का जन्म और बचपन मुम्बई में गुजरा और शादी के बाद से वो गोवा में बस गए, पर वो मूलतः मैंगलोर के हैं)। मैंगलोर में अब हमारा पुश्तैनी मकान तो नहीं है पर वहां अभी भी बहुत सारे रिश्तेदार हैं।

उस दिन हम पिताजी की मौसी के घर रहे जो बस-स्टैंड के काफी नजदीक था। उनका दो मंजिला घर मैंगलोर के केंद्र में स्थित था और वहां मोनिका मौसी अपने तीन बेटों - रेग्गी, पैट्रिक और लैम्बर्ट के साथ रहती थीं। परिवार बड़ा था पर सभी लोग मिलजुल कर साथ रहते थे। मेरे दादाजी जे एक अल्वारिस कोंकणी के जाने-माने लेखक थे। कुछ वर्ष पहले उनका देहान्त हो गया था।

दुआ-सलाम के बाद हमन घर में चाय और नाश्ता किया। उसके बाद पिताजी ने मुझे मैंगलोर शहर घुमाया। मुझे पता था कि कोट्टायम के सेमिनार के बाद मुझे अकेले गोवा वापस लौटना था। लौटते वक्त कहीं मैं खो न जाऊं इसलिए मैंने हरेक स्थान को बहुत ध्यान से देखा। हम्पनकट्टा रेल्वे-स्टेशन मैंगलोर के केंद्र में है, बस-स्टैंड और मोनिका मौसी के घर का रास्ता मैंने अच्छी तरह नोट किया। शहर घूमन के बाद घर लौटते वक्त रात हो गई। वहां हमने छककर खाना खाया और फिर जल्दी से सो गए क्योंकि हमें सुबह 3 बजे अपनी आगे की यात्रा के लिए उठना था।

हमारी ट्रेन ठीक सवा चार बजे छूटी। पूरे दिन हम हरी-भरी वादियों से होकर गुजरे। रास्ते में कान्नूर, कैलिकट, थ्रिसूर और इरनाक्यूलम स्टेशन पड़े और हम शाम को पौने-चार बजे अपनी मंजिल यानि कोट्टायम स्टेशन पहुंचे। वहां होटल ऐश्वर्या में हमारे रहने का इंतजाम था। मैं जाते ही नहाया और फिर शहर में घूमने के लिए निकला। पर बारिश के कारण मुझे जल्दी ही होटल में वापस लौटना पड़ा।

क्योंकि सेमिनार होटल ग्रीन पार्क में था इसलिए हमें सुबह को वहां जाना पड़ा। सेमिनार में भाग लेने के लिए हमारा पंजीकरण पहले ही हो गया था। वहां हरेक सहभागी को कपड़े का थैला, पेन और सेमीनार में नोट्स लेने के लिए नोटबुक भेंट की गई। वहां पर कई दुकानें भी लगी थीं जो बहुत सारी चीजें बेंच रही थीं जिनमें जैविक चाय, अचार और किताबें शामिल थीं।

हम अभी देख ही रहे थे तभो आयोजकों ने उद्घाटन समारोह के लिए सभी सहभागियों को बुलाया। पूरे दिन वैज्ञानिकों के भाषण होते रहे। बीच में शाकाहारी भोजन के लिए विराम मिला पर बाकी पूरे दिन भाषणों का सिलसिला जारी रहा। केंचुओं पर भाषण मुझे बहुत अच्छा लगा। उसे डा सुल्तान इल्माइल ने दिया था। मैंने यहां उस भाषण का विस्तार से जिक्र नहीं कर रहा हूं क्योंकि पुस्तक में आगे का एक अध्याय डा इल्माइल के साथ मेरे काम के बारे में है।

अगले दिन भी पहले जैसे ही कार्यक्रम जारी रहा। किसानों के सत्र की अध्यक्षता मेरे पिताजी ने की। इस सत्र में कई किसानों ने जैविक-खेती के अपने अनुभवों के बारे में बताया। मुझे यह सत्र काफी पसंद आया।

वायनाड के जंगल में घुमक्कड़ी।

उस दिन दोपहर के भोजन के बाद मैं, पिताजी और गुरू रिशी प्रभाकर (सिद्ध समाधी योग कार्यक्रम के संस्थापक) और कार्तीकेयन (जैविक खेती का शोधकर्ता) हम सभी लोग जैविक-खेती करने वाले श्री के टी थामस की खेती को देखने गए। उन्होनें हमें अपना मछली (श्रिम्प) ताल, रबर के वृक्षारोपण, गाय,

आर्किड, विशाल बांस और फिल्टर ताल दिखाए। उनका खेत बहुत बड़े क्षेत्रफल में फैला था। वहां बिल्कुल वैसा अंधेरा और नमी थी जैसी जंगल में रात के समय होती है!

अगले दिन सुबह हमने कैलीकट की ट्रेन पकड़ी। रास्ते में हम एरनाक्यूलम और थ्रिसूर के स्टेशनों से होकर गुजरे। शोरानूर स्टेशन पर हमने गाड़ी बदली और वहां से हम बस लेकर हमने सुल्तान बैटरी गए जहां हम 'रिसाट' नाम के होटल में रुके। हमेशा की तरह हमने शहर की सड़कों पर खूब घुमक्कड़ी की।

अगला कार्यक्रम वायनाड में था। यहां पर जैविक-खेती में रुचि रखने वालों की एक और मीटिंग होने वाली थी। यहां हम वायनाड वाइल्ड-लाईफ डिविजन के गेस्टहाउस में रुके।

ग्रुप बहुत बड़ा नहीं था पर उनमें आपस में बहुत जोरदार चर्चा हुई। मुझे चर्चा सत्रों में कोई दिलचस्पी नहीं थी इसलिए मैं अपनी मनमर्जी से बाहर घुमक्कड़ी के लिए निकल जाता था। मुझे वहां लोगों का साथ बहुत अच्छा लगा। वे जैविक-खेती के बारे बहुत कुछ जानते थे और अपने काम में बहुत सक्रिय थे। उनमें से कुछ लोगों को मैं छुट्टी वाले साल के दौरान बाद में मिला। उनमें औरोवेल से बरनार्ड, अहमदाबाद से कोराह मैथन और उनकी बेटी निधी और ओंकार शमिल थे।

हम सुबह और शाम को जंगल में लम्बी सैर के लिए जाते थे। पहले ही दिन हमें नीलगिरी लंगूरों के साथ-साथ छोटे पक्षी, मेंढ़क और अनेकों सुंदर पेड़ दिखाई दिए।

शाम को आयोजकों ने हमें भवानी नदी के प्रदूषण पर दो फिल्में दिखायीं। उसके बाद हमने एक बहुत लोकप्रिय फिल्म देखी *'एनिमल्स आर ब्यूटिफुल पीपल'*।

अगले दिन सुबह की सैर के समय (या हमारा दूसरा दिन था) हमें '*स्पाटिड डीयर*' का एक झुंड और एक इकलौता '*बारकिंग डियर*' भी दिखा। हमें बहुत से जानवरों के पदचिन्ह दिखे। पदचिन्ह ज्यादातर हिरणों के थे पर उनमें हमें हाथी के भी पदचिन्ह दिखाई दिए। इस अनुभव से मैं बहुत खुश आर उत्तेजित हुआ और उसके बाद से मेरे साथ जो भी चलने को तैयार होता मैं उसे लेकर सैर पर निकल जाता।

तीसरे दिन श्री शिवानंद ने पश्चिमी घाटों के ऊपर एक बहुत रोचक भाषण दिया। उन्होंने पश्चिमी घाटों के ऊपर हमें कई स्लाइड्स दिखायीं जिनमें कीटभक्षी पाधे, पहाड़ी बकरियां, भाप के ठंडे होने पर बनी पानी द्वारा बनी नदियां, और दस सालों में एक बार फूलने वाले पौधे दिखाए। स्कूल में विज्ञान और भूगोल में मैंने जो कुछ पढ़ा था वो अब मेरे सामने सजीव हो उठा।

उस शाम हमने दो फिल्में देखीं। एक जंगली कुत्तां पर थी (*वाइल्ड डाग्स*) और दूसरी हाथियों पर थी (*लार्ड ऑफ द जंगल*)। दोनों फिल्में बेहद सुंदर थीं। अगली सुबह हम दुबारा सैर पर गए पर इस बार हमें केवल चिड़िए दिखीं। उस दिन हम 12-किलोमीटर चले। उस शाम को कार्यक्रम का समापन सत्र हुआ।

शाम को फॉरेस्ट विभाग ने हमारे लिए जंगल की सैर का आयोजन किया। हम काफी चले और वॉच-टावर के साथ-साथ हिरण, जंगली सूअर भी देखे। बाघ के पदचिन्ह दिखने के बाद हम तुरन्त वापस लौट आए। रात को हमने दो अन्य फिल्में देखीं - एक नर्मदा नदी पर थी (द *वैली राइजिस*) और दूसरी का नाम था 'द *साइलेंट स्प्रिंग*'।

मीटिंग समाप्त होने के बाद मेरे पिताजी को किसी काम से चेन्नई जाना था और मुझे अकेले गोवा वापस लौटना था। पिताजी और मैं बस में साथ-साथ कैलिकट पहुंचे। रेल्वे-स्टेशन पर पिताजी ने मेरे लिए

मैंगलोर का टिकट खरीदा। फिर दापहर दो बजे वो चले गए। मुझे चार बजे तक अपनी ट्रेन के आने का इंतजार करना पड़ा।

यह पहला मौका था जब मैं ट्रेन में अकेले सफर कर रहा था। इसलिए मैं काफी घबराया हुआ था। ट्रेन के आने में अभी दो घंटे बाकी थे फिर भी मैंने सोने की हिम्मत नहों की। मेरे पास बैटरी संचालित विडियो गेम्स थे। मैं दो घंटे उन्हीं से खेलता रहा। ट्रेन के आने के बाद बहुत हलचल हुई और लोग डिब्बों में तेजी से घुसने लगे। मैंने एक-दो लोगों से कुछ पूछने की कोशिश की पर किसी ने भी संतोषजनक उत्तर नहीं दिया। फिर मुझे एक खाली स्थान मिला और मैं वहां आराम से बैठ गया। कुछ देर में ट्रेन चल दी।

मैं यात्रा के दौरान सतर्क रहा और अपने सामान की निगरानी करता रहा (मेरे पास एक रकसैक और एक स्लीपिंग-बैग था - दोनों नए थे)। मैंने जेबकतरों और चोरों के बारे में सुना था इसलिए मैं पूरी तरह सावधान था। मैं किसी भी स्टेशन के प्लैटफार्म पर नहीं उतरा क्योंकि ट्रेन वहां कितनी देर रुकेगी इसका मुझे कुछ पता नहीं था। पिताजी ने कैलिकट स्टेशन पर मुझे जो फल खरीद कर दिए थे मैं बस उन्हें ही खाता रहा।

ट्रेन रात नौ बजे मैंगलोर स्टेशन पहुंची। स्टेशन से मैं ऑटो लेकर अपनी दादी के घर पहुंचा। इस सफर के लिए मैंने तीस रुपए दिए। शायद यह किराया कुछ अधिक था परन्तु रात का समय था और क्योंकि रास्ता मुझे अच्छी तरह पता था इसलिए मैंने ऑटो वाले से कोई सौदेबाजी नहीं की।

मेरी दादी और उनका परिवार मुझे देखकर खुश हुए। मुझे पता था कि मेरी मां बेसब्री से मेरे लौटने का इंतजार कर रही होंगी। इसलिए बिना देरी किए मैंने अगले दिन ही गोवा लौटने की योजना बनाई।

अगली सुबह मेरे मासेरे भाई ने मुझे स्कूटर पर बस-स्टैंड छोड़ा। वहां गोवा जाने की बस छूटने ही वाली थी। मैं जल्दी से बस में चढ़ा और उसमें अंतिम खाली सीट पर जाकर बैठ गया। बस शाम को पांच बजे पणजी पहुंची। वहां से मैं एक स्थानीय बस लेकर माप्सा पहुंचा। जब बस माप्सा पहुंची तो मेरी सांस-में-सांस आई और मुझे लगा कि मैं अपनी चिरपरिचित जगह पर वापस पहुंचा हूं। वहां मुझे जाने-पहचाने खोमचे वाले और सड़क के कुत्ते दिखाई दिए। वहां से मैं एक मोटरसाइकिल टैक्सी पर सवार होकर घर पहुंचा जो केवल 3-किलोमीटर दूर था।

घर पहुंचते ही मैं गर्व से अपनी मां के पास गया जो मेरे स्वागत में मुस्कुरा रही थीं। मेरे भाई मुझे प्यार से घूंसे मार रहे थे और मेरा कुत्ता मुझे चाट रहा था। सब खुश कि मैं दूर-दराज हाथियों और बाघों के पदचिन्हों से बचकर सही-सलामत घर वापस पहुंच गया हूं।

अध्याय ६

जिन्दा सांप!

कई बार टेलीफोन और पत्र लिखने के बाद ही मेरे पिता पुणे स्थित सर्प-उद्यान के निदेशक श्री नीलमकुमार खैरे से संबंध स्थापित कर पाए थे। उनकी स्वीकृति के बाद ही मैं सर्प-उद्यान जा सका। क्योंकि अभी भी कार्यक्रम पूरी तरह पक्का नहीं हुआ था इसलिए पिताजी भी मेरे साथ आए। पिताजी चेन्नई से वापस आए और फिर 3 अक्टूबर को हम दोनों पुणे के लिए रवाना हुए।

हमारी बस सुबह तड़के ही पुणे पहुंची। मेरे माता-पिता के दो घनिष्ठ मित्र सुजित और विद्या पटवर्धन पुणे में रहते हैं। हमारा पूरा परिवार - मेरे माता-पिता, दोनों छोटे भाई और मैं एक साल पहले उनके घर छुट्टियां मनाने आए थे। उस समय मैंने पहली बार पुणे के सर्प-उद्यान की सैर की थी। उसी दौरान कॉलेज से एक साल की छुट्टी लेने की मेरी योजना भी बनी थी। (सुजित की छोटी बेटी बनी ने मुझे बताया कि उसकी बड़ी बहन और उसकी मित्र ने कई वर्ष पहले एक साल की छुट्टी लेकर देश में वैकल्पि स्कूलों का दौरा किया था। यह सुनकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ)। गणेशखिंड रोड पर स्थित श्री पटवर्धन के घर पर नहाने के बाद हम सर्प-उद्यान के लिए रवाना हुए।

सर्प-उद्यान के निदेशक श्री खैरे उस समय नहीं थे पर सहायक निदेशक श्री राजन शिर्के को मेरे आने का पता था। उन्होंने हमें आश्वास्त किया कि श्री खैरे के आने के बाद मेरे रहने और खाने-पीने का समुचित प्रबंध हो जाएगा। उसके बाद मैं पूरे दिन सर्प-उद्यान में घूम-फिर सकता था परन्तु उस रात मुझे सोने के लिए श्री पटवर्धन के घर ही जाना होगा। श्री शिर्के की बात मानने के सिवाए पिताजी के सामने और कोई विकल्प नहीं था, क्योंकि श्री खैरे तीन दिन बाद ही लौटने वाले थे। पिताजी मुझे सर्प-उद्यान में छोड़कर वहां से मुम्बई चले गए। अगले तीन दिनों तक मैं सुजित के घर से सर्प-उद्यान आता-जाता रहा।

सुजित के घर गणेशखिंड से, कात्रज स्थित सर्प-उद्यान जरूर 20-किलोमीटर दूर होगा। मुझे अच्छी तरह याद है कि पहले दिन मैं अपना रास्ता भूल गया। पिताजी ने सुबह मुझे बस-स्टैंड दिखाया था और मुझे बस का नम्बर भी बताया था। शाम को सर्प-उद्यान का एक कर्मचारी मुझे मुख्य सड़क पर बस-स्टैंड तक छोड़ गया। वहां मैं इंतजार करता रहा पर बस नहीं आई। मैंने आसपास लोगों से पूछा तो उनका उत्तर था, 'धीरज रखो बस आएगी, आज देर हो गई होगी।'

कुछ देर के बाद बारिश होने लगी। क्योंकि बस-स्टैंड खुले आसमान तले था इसलिए मैं पूरी तरह भीग गया। मैंने अपनी नोटबुक को छतरी जैसे इस्तेमाल करने की भरपूर कोशिश की पर उससे भी कुछ फायदा नहीं हुआ। मेरे सामने बहुत से स्कूली बच्चे बारिश में भीगते हुए ऐसे गुजर रहे थ जैसे उन्हें कुछ हुआ ही न हो!! शाम सात बजे तक मैं पानी से तर-बतर हो गया था। मेरे पैर ठंडे पड़ गए थे और अब अंधेरा छाने लगा था। सर्प-उद्यान में पहला दिन निश्चित रूप से मेरे लिए एक यादगार दिवस था।

फिर मैं सड़क के दूसरी ओर टेलीफोन एक्सचेंज गया। सुजित को टेलीफोन करते समय वहां बिजली गुल हो गई। सुजित ने मुझे दूसरे रास्ते से आने के निर्देश दिया। पेन घसीट कर मैं किसी तरह अपनी नोटबुक में 'डेक्कन जिमखाना' और 'शिमला ऑफिस' के नाम दर्ज किए। एक बस पकड़ कर मैं 'डेक्कन जिमखाना' पहुंचा क्योंकि 'डेक्कन जिमखाना' के लिए वहां से कई बसें थीं। वहां से मैंने एक ऑटोरिक्शा ली और फिर कुछ देर इधर-उधर चक्कर खाता हुआ सुजित के घर पहुंचा। काश मेरा पास उस समय मेरी वफादार साइकिल होती, तब मुझे बसों और रिक्शा पर आश्रित नहीं होना पड़ता।

सर्प-उद्यान में पहले दो दिन मैं वहां के लोगों का काम देखता रहा और कुछ नोट्स लेता रहा। मैंने वहां लोगों से दोस्ती बनाई और उसके नतीजतन उन्होंने मुझे एक *'ट्रिनकिट'* सांप सम्भालने को दिया। तीसरे दिन जब श्री खैरे आए तो उन्होंने सर्प-उद्यान में ही मेरे रहने की व्यवस्था की। वैसे पार्क में रहने की जगह नहीं थी। सर्प-उद्यान में कई छात्र कुछ दिनों के लिए सीखने और काम करने के लिए आते, पर शाम को वे सभी पुणे स्थित अपने घरों को लौट जाते।

श्री खैरे सर्प-उद्यान के कर्मचारियों में बहुत लोकप्रिय थे और प्यार से सभी लोग उन्हें 'अन्ना' (मराठी में बड़ा भाई) बुलाते थे। वो हमेशा लम्बी आस्तीन की कमीज और हाथ में दस्ताना पहनते थे। कई साल पहले एक '*रसिल वाइपर*' के काटने से वो अपना बांया हाथ खो चुके थे। उसके बावजूद सांपों के प्रति उनका उत्साह और उमंग बिल्कुल कम नहीं हुआ था।

सर्प-उद्यान काफी बड़ा था और उसमें कई सांपों के लिए गड्ढे हैं जिनमें विभिन्न प्रजातियों के सरीसृपों को रखा जाता था। बीच में एक प्रशासनिक ब्लाक था जो आगंतुकों के मिलने और बैठने का स्थान भी था। इसी कमरे में ही '*किंग कोबरा*' और '*पायथन*' की प्रदर्शनियां लगी थीं। पास में ही एक स्टोर रूम और टॉयलेट था। ऊपर की मंजिल पर एक बड़ा कमरा था जिसमें दो पलंग लगे था। मैं इसो कमरे में ठहरा। मैं अकेला न रहूं इसलिए रात को चौकीदार को दूसरे पलंग पर सोने को कहा गया। अन्ना ने मेरे कमरे में एक टेलिवीजन और टेलीफोन का एक्सटेंशन भी फिट कराया। उन्होंने मुझे उनके घर पर कभी भी आकर रहने और खाने का खुला निमंत्रण दिया। पर मैंने पार्क में ही रहना ही पसंद किया।

अन्ना और शिर्के के साथ सर्प-उद्यान में आठ-दस अन्य लोग काम करते थे। उनमें जिन से मेरी अच्छी जान पहचान हुई उनमें महेश, मिलिन्द, भूषण और चौकीदार बाबा शामिल थे। बहुत से छात्र रात्रि-स्कूल में पढ़ते थे और दिन में सर्प-उद्यान मं काम करते थे। रविवार और छुट्टी वाले दिन काम में हाथ बंटाने के लिए कई अन्य छात्र भी आते थे। कभी-कभी कुछ छात्र रात को मेरे साथ भी रुकते और फिर हम मिलकर टेलीवीजन देखते और गप्पे मारते। रात को भोजन के बाद मैं रोजाना अपनी डायरी लिखता और कभी-कभी कुछ पढ़ता भी था।

सर्प-उद्यान में मेरा काम वहां के कर्मचारियों की मदद करना था। सांपों के बारे में सीखने का यही सबसे अच्छा तरीका था। इसलिए हर रोज मैं *स्टारबैक* कछुए, टर्की, मुर्गियों और बाद में *'रैट-स्नेक'* (धमन सांप), '*चेकर्ड कीलबैक*' और गोह (*मॉनिटर लिजर्ड*) के गड्ढों को साफ करता था। मैं सांपों को खाना खिलाने में भी मदद करता था। अधिकांश सांपों को छोटे चूहे और मेंढक खिलाए जाते हैं। सफेद चूहे प्रयोगशाला से आते थे। अजगर (*पायथन*) को हर हफ्ते एक मुर्गी खिलाई जाती है।

मुझे सांपों को सम्भालने का सही तरीका सिखाया गया। तीसरे दिन एक '*वोल्फ सांप*' ने मुझे काटा। यह सांप विषैला नहीं है और उससे मुझे इसलिए कटवाया गया जिससे कि मैं सांपों संबंधित अपने बेबुनियादी भय को मिटा सकूं। कहानियों के जरिए सांपों का डर हममें बचपन से ही कूट-कूट कर भरा जाता है। वैसे मुझे सांपों से प्यार था फिर भी अन्ना को लगा कि सांप काटने से मेरे अचेतन में व्यापत डर भी निकल जाएगा! इस सांप के काटने से मुझे बहुत ज्यादा दर्द नहीं हुआ और उसका इलाज भी किसी अन्य जख्म जैसे ही किया गया।

सर्प-उद्यान में मैं तीन हफ्ते रहा और इस दौरान मुझे कई दफा विषहीन परन्तु उग्र सांपों ने काटा। जाते वक्त मेरे हाथों में 15-20 सांप काटे के निशान थे। कुछ सांप के काटे जख्म काफी दर्दनाक थे। एक

बार तो मेरी कलाई इतनी सूज गई कि कई दिनों तक मैं अपनी घड़ी तक नहीं पहन पाया। पर अगर आपको यह मालूम हो कि काटते वक्त सांप को आपसे ज्यादा नुकसान होता है – काटने के दौरान सांप के कई दांत टूट जाते हैं तो फिर आपको सांप-काटे का इतना दुख नहीं होगा। क्योंकि मुझे बिना जहर वाले सांपों ने काटा था इसलिए मुझे एंटी-वैनम दवा लेने की जरूरत नहीं पड़ी। धीरे-धीरे सांप-काट को मैं चोट मानने लगा और उनसे मेरा डर भी निकल गया।

सांपों के साथ-साथ पार्क में अन्य कई जानवर भी थे। कुछ को बचाया गया था, अन्य को चोट लगने के बाद पार्क में उपचार और आराम करने के लिए लाया गया था। उन दिनों वहां एक जंगली सूअर, बिज्जू, तेंदुआ, शिक्रा, तीन नेवले और अनेकों प्रकार के उल्लू और चीलें थीं जिनके डैने टूटे थे। उल्लुओं और चीलों को पिंजड़ों में रखा जाता था। इस पिंजड़ों की छत खुली होती थी। तबियत दुरुस्त होने के बाद उन्हें मनमर्जी से उड़ कर जाने की छूट थी। वहां कई प्रजातियों की रंग-बिरंगी मुर्गियां, चूहे, खरगोश, बंदर और टर्की की एक जोड़ी भी थी। साथ में गंगा में पाए जाने मुलायम खोल वाले कछुए, सितारों के निशान वाले कछुए और *मेलेनिक* प्रजाति के कछुए भी थे। इन सभी जानवरों को रोज भोजन खिलाना और उनके कटघरों को नियमित रूप से साफ करना पड़ता है।

अगर पुणे शहर में किसी को सांप दिखाई पड़ता तो वो सर्प-उद्यान को टेलीफोन से सूचित कर सकता था। फिर सर्प-उद्यान से कोई व्यक्ति उस स्थान पर पहुंचने के निर्देश लेकर वहां जाकर सांप को पकड़ने का प्रयास करता था। इससे लोग व्यर्थ में सांपों को मारते नहीं थे। दो बार मैं सांप पकड़ने वाले लड़कों के साथ में गया। पर दोनों बार हम खाली हाथ लौटे। इसके लिए हमें अक्सर सर्प-उद्यान से बहुत दूर जाना पड़ता था और उस बीच सांप वहां से सटक लेता था।

सर्प-उद्यान में रोजाना बहुत सारे दर्शक आते हैं और वे अपने प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए अक्सर किसी ज्ञानी व्यक्ति को तलाशते हैं। दर्शकों के सवालों के जवाब देने में मुझे बहुत गर्व होता था। अक्सर सवाल होत थे : 'इस सांप का नाम क्या है?' 'वो क्या खाता है?' 'इनमें से नर कौन है, और मादा कौन है?' इत्यादि। बाकी समय मैं अपने साथियों से सांपों के जीवन के बारे में विस्तृत जानकारी हासिल करने में व्यस्त रहता था। सर्प-उद्यान के कर्मचारी सांपों के बारे बहुत जानकारी रखते थे और यह सब उन्होंने व्यावहारिक अनुभव से सीखी थो।

कुछ रातों को हम मेंढक पकड़ने जाया करते थे। इसके लिए हम स्कूटरों पर सवार होकर करीब दस किलोमीटर दूर स्थित नदी के किनारे जाते थे। मेंढक पकड़ने का तरीका सरल था। एक व्यक्ति नदी के किनारे टार्च की रोशनी चमकता - जिससे मेंढकों को दिखाई नहीं देता था और वे चलते-चलते रुक जाते थे। फिर दूसरा व्यक्ति पीछे से आकर मेंढकों को नंगे हाथों से पकड़ लेता था। (मेंढकों को जिंदा पकड़ना होता है नहीं तो सांप उन्हें खाते नहीं हैं)। मेंढकों का पकड़ना आसान होता है क्योंकि टार्च की रोशनी में उनकी आंखें चौंधा जाती हैं और वे कुछ क्षणों के लिए रुक जाते हैं। मेंढक गीले होने के कारण हाथों से फिसल सकते हैं इसलिए उन्हें पकड़ने में बहुत सावधानी बरतनी पड़ती है। दो-तीन घंटों के बाद हम अपने थैले में 25-30 मेंढक जमा करके वापस लौटते थे।

सर्प-उद्यान के बाहर एक छोटी झोपड़ी में कुछ गरीब लोग पार्क के कर्मचारियों के लिए खाना पकाते थे। मैं वहीं भोजन करता था। एक लोकप्रिय व्यंजन का नाम 'शैम्पल' था। वो सब्जियों से बनता था और उसके ऊपर बहुत तेल तैरता रहता था। उसे लाल रंग की तीखी सब्जी को ब्रेड के साथ खाया जाता था।

कुछ दिनों तक इस स्वादिष्ट भोजन को खाने के बाद मेरा खराब हो गया और मुझे सात बार शौचालय जाना पड़ा। उसके बाद मैंने 'शैम्पल' दुबारा कभी नहीं चखा। अब मैं सिर्फ दाल, चपाती और सस्ते क्रीमरोल्स खाकर अपना पेट भरता।

सर्प-उद्यान का गुसलखाना काफी गंदा था इसलिए मैं नहाने से कतराता था। मैं अपने लम्बे बालों को गीला कर लेता था जिससे कि लोगों को लगे कि मैं नहाया हूं। जब सर्प-उद्यान के लोगों को मेरी चाल का पता लगा तब उन्होंने मुझे नहलाने की योजना बनाई। एक दिन उन्होंने मुझे पकड़कर मेरे सारे कपड़े उतारे। फिर गुसलखाने में ले जाकर उन्होंने मुझे डिटरजेंट पाउडर और '*हारपिक*' के टायलेट ब्रश से रगड़-रगड़ कर नहलाया।

उन्हें यह भी पता चला कि मुझे रात के अंधेरे और हुंआ-हुंआ की आवाजों से डर लगता था। तब उन्होंने मुझे तमाम भूत-प्रेतों की कहानियां सुनायीं। डर लगने के बावजूद मुझे इन कहानियों में बहुत मजा आता था। आखिरी रात मेरा असली भूत से पाला पड़ा। घटना का क्रम इस प्रकार है। रात को हम तीन लोग चौकीदार के साथ टेलीवीजन देख रहे थे। तब उनमें से भूषण नाम के एक लड़के को सांप पकड़ने कहीं जाना पड़ा। उसके कुछ देर बाद बिजली गुल हो गई और बिल्ली की म्याऊं की आवाज आने लगी। चौकीदार को उससे कुछ फर्क नहीं पड़ा पर मैं और दूसरा लड़का पोपिया डर से कांपने लगे। फिर दरवाजे पर रोशनी चमकी और दरवाजा पर जोर-जोर से दस्तक होने लगी। मराठी में कहीं से आवाज आई, 'खिड़की बंद करो'। फिर एक के बाद एक करके कुछ-न-कुछ अजीबोगरीब वारदात होती रही। दो हड्डियों के साथ एक खोपड़ी बाहर खिड़की के पास नाच रही थी। जब हमने दबे पांव बाहर जाकर देखा तो वहां कोई नहीं मिला। वापस लौटने पर मेरा बिस्तर जमोन पर पड़ा था और सारा सामान इधर-उधर फेंका पड़ा था। तभी दरवाजे की चौखट हिली और खिड़कियां जोर से हिलने लगीं। मैंने कसकर चौकीदार का हाथ पकड़ लिया। मुझे बताया गया था कि भूत से पाला पड़ने पर सलीब का चिन्ह बनाने से वो रफूचक्कर हो जाता है। मैं यह नुस्खा भी अपनाया पर सफल नहीं हुआ। शायद भूत इसाई धर्म से अवगत नहीं था। तभी भूषण का फोन आया कि वा काम से लौट रहा है। भूषण के आने के बाद भूत अचानक कहीं नदारद हो गया। उसके बाद भूत दुबारा वापस कभी नहीं आया। अगले दिन जब मैंने अन्ना और अन्य लोगों को भूत की दास्तां सुनाई तो सभी लोग ठहाका मार कर हंसे।

सर्प-उद्यान में रहते समय अजगर को छोड़कर मैंने बाकी सभी प्रकार के गैर-विषैले सांपों को सम्भालना सीखा। मैंने गोह और छिपकलियों को पकड़ना सीखा और केंचुओं को खाना सीखा। केंचुओं को खाना मेरे प्रशिक्षण का हिस्सा नहीं था। परन्तु एक दिन बाकी बच्चों द्वारा चुनौती दिए जाने पर श्री शिर्के ने अपने मुंह में एक केंचुआ डाल लिया। मैंने उनकी नकल करने की सोची। पहली बार मेरा जी मिचलाने लगा पर फिर मैंने केंचुए को चबाया। वो बिल्कुल खीरे जैसा कुरकुरा लगा। दूसरी बार मुझे अच्छा लगा। केंचुए देखने में सिलबिले लगते हैं पर उनका स्वाद खीरे जैसा होता है।

सर्प-उद्यान में मुझे आखरी दिन एक *कोबरा* (नाग) को सम्भालने का मौका मिला। मैंने उसकी गर्दन को एक लकड़ी से दबाया और फिर उसकी पूंछ को उठाया। मैंने ऐसा 2-3 बार किया और उसके बाद कोबरा को उसके बक्से में वापस रखा गया। इससे मैं बहुत उत्तेजित और प्रसन्न हुआ। सर्प-उद्यान में मेरा अंतिम दिन बहुत खुशहाल बीता।

यह लिखते समय मुझे सांपों के साथ अपने पुराने अनुभव याद आ रहे हैं। मेरी मां अक्सर एक सच्ची कहानी सुनाती हैं। तब मैं कुछ ही महीनों का रहा होऊंगा। मैं अपने घर वौलपोई में अपने पालने में लेटा था। तभी मां को कोई आवाज सुनाई दी और उन्हें पालने के पास एक पतले हरे-नीले रंग के सांप को गोल-गोल चक्कर लगाते देखा। जरूर वो सांप ऊपर छत से गिरा होगा। गांव में सांप मिलना एक आम बात है और '*रस्टिक*' फार्म पर वो अक्सर दिखते थे। सांप को देखकर मां को बेहद डर लगा पर उन्होंने कोई आवाज नहीं की क्योंकि मैं गहरी नींद में सोया था और मेरा पालना मच्छरदानी से ढंका था जिसके बाहर सांप चक्कर काट रहा था। एक मिनट के बाद सांप कुर्सियों पर चढ़कर खिड़की से बाहर निकल गया। मां ने जब मुझे सुरक्षित पाकर उनकी जान-में-जान आई। उनके वर्णन से मुझे लगता है कि वो '*ग्रीन-विप*' सांप होगा। यह सांप कोई हानि नहीं पहुंचाता है।

बचपन में मैं फार्म पर कुछ पुराने गत्तों क खोखों के साथ खेल रहा था। उनमें एक डिब्बे में से तेजी से सांप बाहर निकला। मेरे माता-पिता को तब बहुत आश्चर्य हुआ जब मैं घबराया नहीं और जल्दी से हाथ-पैरों से रेंगते हुए सांप को पकड़ने के लिए दौड़ा!

मां के अनुसार मैं बचपन में जानबूझ कर सांपों स दोस्ती करता था। वैसे मुझे कुत्तों से डर लगता था क्योंकि दांत होने के कारण वो काट सकते थे। क्योंकि सांपों के दांत दिखाई नहीं देते थे इसलिए वो हमेशा के लिए मेरे जिगरी दोस्त बने।

फील्ड वर्क नोट्सः

दुनिया में कुल मिला सांपों की 2500 प्रजातियां हं। इनमें से केवल 15-प्रतिशत ही विषैली हैं। सांपों की सबसे अधिक विषैली प्रजातियां आस्ट्रेलिया में पाई जाती हैं (वहां 90-प्रतिशत सांप जहरीले होते हैं।)

भारत में सांपों की 238 प्रजातियां पाई जाती हैं। इनमें से केवल 72 विषैली होती हैं और चंद ही घातक नुकसान पहुंचा सकती हैं। मिसाल के लिए '*पिट वाइपर्स*' विषैले होते हैं पर वे बहुत बिरले ही मनुष्यों के लिए घातक साबित होते हैं। चार विषैले सांप हैं 1) *कोबरा* 2) *क्रेट* 3) *रसिल्स वाइपर* 4) *सॉ स्केल्ड वाइपर।* इनमें से सबसे अधिक जहरीला *कॉमन क्रेट* होता है। उसका जहर कोबरा से भी 4-गुना घातक होता है।

सभी समुद्री सांप विषैले होते हैं। दुनिया में सबसे जहरीले सांप समुद्री सांप होते हैं। इनमें से कुछ तो *कोबरा* से 5-गुना अधिक जहरीले होते हैं। परन्तु समुद्री सांप केवल बहुत परेशान करने पर ही काटते है। वे समुद्र में तराकों को कभी नहीं काटते हैं।

सांप ठंडे रक्त के प्राणी हैं। उनकी देख पाने की क्षमता बहुत कम विकसित होती है और उनकी भौहें नहीं होती हैं। वे बहरे होते हैं और केवल कम्पन होने पर प्रतिक्रिया करते हैं। वो चखने, छूने और सूंघने का कार्य अपनी दो-नोकों वाली जीभ से करते हैं। उनकी यह इंद्रियां बहुत अच्छी तरह विकसित होती हैं और वे इनसे मृत या जीवित प्राणी, अपने शिकार या दुश्मन को पहचान लेते हैं।

कुछ विषैले सांप अपने दुश्मन में जहर घुसाकर उसे छोड़ देते हैं। जब जहर अपना काम कर चुका होता है तब वो शिकार को अपनी जीभ से खोज निकालते हैं। जहर में कुछ पाचक एंजाइम होते हैं जो शिकार को अंदर से हजम करना शुरू करते हैं।

सांपों की व्यस्क होने तक बहुत तेजी से वृद्धि होती है, उसके बाद मरने तक उनकी वृद्धि बहुत धीमी होती है। बड़े होने पर उनकी पुरानी त्वचा छोटी हो जाती है, और अंदर नई त्वचा बनने पर वो पुरानी त्वचा को त्याग देते हैं। सांप अपनी पुरानी त्वचा को नाक से फाड़ते हैं और फिर केंचुली में से रेंग कर बाहर निकल जाते हैं। केंचुली त्यागते समय सांप खाना छोड़ देते हैं और आक्रामक हो जाते हैं।

विषैले सांप के काटने के प्रभाव सीधे मनष्यों के *नर्वस सिस्टम* (तंत्रिका प्रणाली) और रक्त-शिराओं पर पड़ता है। सांप के काटने का एक ही इलाज है और वो है *एंटी-वैनम*। इसे बनाने के लिए पहले जहर को नियंत्रित मात्रा में (खतरनाक मात्रा का दसवां भाग) घोड़ों में इंजेक्ट किया जाता है। धीरे-धीरे जहर की मात्रा को बढ़ाया जाता है जिससे घोड़ा सांप के जहर से प्रतिरक्षित (*इम्यून*) हो जाता है। फिर घोड़े के रक्त को निकालकर उसे ठंडा करके जमाया जाता है और उसकी *एंटी-बाडीज* को अलग कर साफ किया जाता है। फिर उसका पाउडर बनाया जाता है। इस प्रकार आम उपयोग का *एंटी-वैनम* बनता है।

सांप के काटने पर तुरन्त निम्न प्राथमिक उपचार करना चाहिए। मरीज को घबराहट से बचाना चाहिए और उसे आश्वासन देकर गर्म रखना चाहिए। सांप साधारण था या विषैला यह जख्म का निरीक्षण करके पता करना चाहिए। विषैले सांप के जख्म पर उसके नुकीले दांतों के दो निशान होंगे, जबकि साधारण सांप के काटने पर कई दांतों के निशान होंगे।

अगर विषैले सांप ने काटा हो तो मरीज को बिल्कुल हिलने-डुलने नहीं देना चाहिए। मरीज को चाय, काफी, दारू के साथ-साथ दर्द से मुक्ति दिलाने वाली कोई दवा भी नहीं देनी चाहिए।

जख्म को न तो काटना चाहिए और न ही उसे साफ करना चाहिए क्योंकि उससे इन्फैक्शन हो सकता और रक्त की क्षति भी हो सकती है। जख्म के थोड़ा ऊपर एक मुलायम रस्सी स गांठ बांधनी चाहिए। गांठ इतनी ढोली होनी चाहिए कि उसमें से एक ऊंगलो अंदर जा सके। फिर मरीज को जल्दी-से-जल्दी नजदीक के अस्पताल में ले जाना चाहिए। गांठ को *एंटी-वैनम* उपचार देने के बाद ही खोलना चाहिए। पर गांठ को हरेक 90-सेकंड के बाद 10-सेकंड के लिए खोलना चाहिए। गांठ छह घंटों से ज्यादा समय तक नहीं बंधी रहनी चाहिए। अस्पताल में *एंटी-वैनम* उपचार के बाद सांप के विष का असर बहुत जल्दी कम होता जाता है।

सांपों से बचने के लिए निम्न सावधानियां बरतें। घर के आसपास का कूड़ा-कचरा साफ रखें। चूहों के बिलों को भरें और घर में और उसके आसपास चूहां की आबादी को बढ़ने से रोकें। घर को छूने वाली पेड़ों की टहनियों को खिड़कियों और बरामदां से लटकी बेलों को भी काटें। जंगल में चलने के लिए सुरक्षित जूतों का उपयोग करें। किसी भी वस्तु जिसका आपको दूसरा छोर न दिख रहा हो उस पर पांव न रखें। और रात को घर से बाहर जाते वक्त टार्च का अवश्य उपयोग करें।

अध्याय ७

छुट्टी के बीच में छुट्टी

वैसे मैं पुणे के सर्प-उद्यान में सिर्फ तीन हफ्ते ही रहा, परन्तु उसमें मुझे इतना मजा आया कि मेरा घर वापस जाने का मन नहीं हुआ। सौभाग्य से मेरे परिवार ने उस साल दीवाली की छुट्टियां राजस्थान में बिताने का मन बनाया। क्योंकि उन्हें उत्तर की ओर जाने जाने की ट्रेन मुम्बई से पकड़नी थी इसलिए मैंने पुणे से सीधे मुम्बई जाने का निश्चय किया। मैं मुम्बई में उनसे गिरगाम स्थित अपने दादाजी के घर पर मिला। इस प्रकार मैं सर्प-उद्यान में कुछ और दिन बिता सका और पुणे से मुम्बई महानगरी में अपने दादाजी के घर पहुंच सका।

सुजित ने मेरे लिए मुम्बई का एक बस टिकट खरीदा और मुझे बस-स्टैंड तक भी छोड़ा। इससे पहले मेरे पिताजी ने काफी विस्तार में मुझे दादर बस स्टैंड से गिरगाम पहुंचने के निर्देश दिए थे। अगर इत्तिफाक मैं कहीं खो जाऊं तो मुझे क्या करना चाहिए यह भी घबराई हुई मां ने मुझे बताया था। बाद में मुझे पता चला कि मेरे चाचा और परिवार को भी इसकी जानकारी दी गई थी। संकट में पड़े भतीजे का टेलीफोन आए तो वे क्या करें, यह उन्हें पता था। पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। मैं खुद अपने आप दादाजी के घर पहुंचना चाहता था। और मैं अपने मुहिम में सफल भी हुआ।
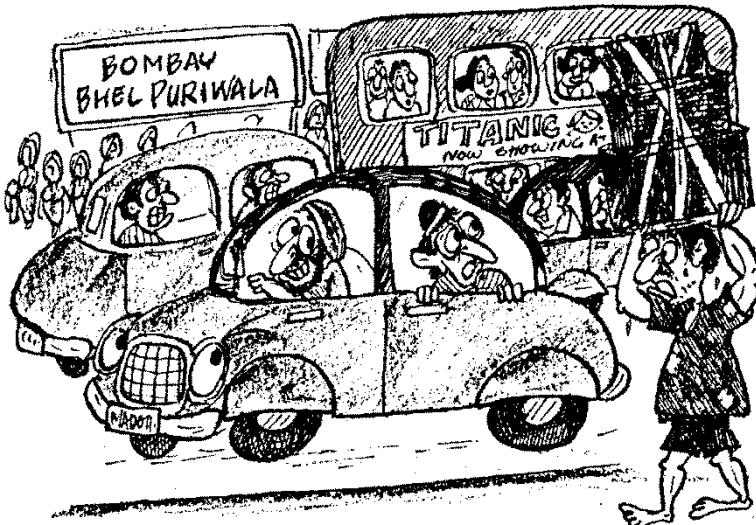
मुम्बई में अकेले टैक्सी यात्रा।

बस पुणे से 10 बजे छूटी और मुम्बई दोपहर 2 बजे पहुंची। मैं एक टैक्सी में बैठा और मैंने ड्राइवर को पता बताया। फिर टैक्सी अनजान सड़कों को पार करती आगे बढ़ती रही। ड्राइवर ने मुझे जिस स्थान पर छोड़ा उसे मैं बिल्कुल पहचान नहीं पाया। पर इधर-उधर 20-मिनटों तक भटकने के बाद मैंने अपने आपको जाने पहचाने घर 47/सी खोटाचीवाडी के सामने खड़ा पाया। यह मेरे दादाजी का का पुश्तैनी घर था। मेरे चाचा-चाची मेरा इंतजार कर रहे थे और मेरे प्रिय चचेरे भाई लूसियानो और रिकार्डो मेरी राह देख रहे थे। एक घंटे बाद मेरे बेचैन माता-पिता का गोवा से टेलीफोन आया। तब तक मैं नेकर पहनकर अपने भाईयों के साथ टेलीवीजन पर एक फिल्म का लुत्फ उठा रहा था।

अगले कुछ हफ्ते मैंने कुछ पढ़ाई-लिखाई नहीं की क्योंकि मैं अपने परिवार के साथ छुट्टियों में मौज-मस्ती कर रहा था। इसलिए इस दौर में मैंने सांपों, मेंढकों और मछलियों का दामन छोड़ दिया। छुट्टियों में कुछ दिनों के लिए हम अहमदाबाद भी गए जहां हम कोराह और सू मैथन के साथ रहे। मैं कोराह और उनकी बेटी निधी को कुछ महीने पहले वायनाड में हुई जैविक-खेती की बैठक में मिला था। जब मुझे पता चला कि अहमदाबाद में एक सर्प-उद्यान है तो फिर तो अपनी जिज्ञासा की तुष्टि के लिए मैं वहां भी गया। सर्प-उद्यान में हम अजगर, *रसिल्स वाइपर्स, क्रेट्स, चेकर्ड कीलबैक्स, बोआ,* धामन (*रैट-स्नेक*) और कोबरा सभी सांपों को कांच के पिंजड़ों में देख पाए। पार्क में स्टारबैक कछुए, गोह, विभिन्न प्रकार की बत्तखें, बंदर और अन्य छोटे जानवर भी थे। वहां एक छोटा मछली-घर भी था जिसका हालत काफी खस्ता थी। ऐसा क्यों था - क्या पैसों की कमी थी या फिर रुचि का अभाव था, यह मैं समझने में असमर्थ रहा।

अहमदाबाद से हम ट्रेन द्वारा जयपुर पहुंचे। वहां हमने अगले आठ दिन श्रीलता और महेन्द्र चौधरी के घर पर गुजारे। हमारा आधार जयपुर था इसलिए हमने दो रातें वहां से पास स्थित असली किले में गुजारीं। किसी किले में रहने का यह मेरा पहला अनुभव था और वहां पर ऊंचाई पर स्थित ठंडे कमरों में रहने का कुछ और ही मजा था। वहां कुछ कमरे छोटे तो कुछ बहुत बड़े थे और कुछ गलियारे इतने सकरे और कम ऊंचे थे कि वहां सिर झुका कर चलना पड़ता था। बस उन्हीं दिनों मशहूर सूर्यग्रहण पड़ा जिसका चर्चा पूरे शहर में हुई। पर मैं सूर्यग्रहण से कुछ निराश हुआ क्योंकि बहुत कम समय के लिए ही अंधेरा हुआ और जल्द ही सब कुछ सामान्य हो गया। मेरे मित्रों को टेलीवीजन पर दिखाए सूर्यग्रहण का अनुभव बहुत अधिक रोचक लगा।

हम जयपुर में हर दिन सैर-सपाटे के लिए जाते। हम किले, राजमहल और बाजार देखते जहां मिट्टी के कुल्हड़ों में स्वादिष्ट कुल्फी आर लस्सी और तंदूरी चिकन बिकती थी। फिर हम उदयपुर तक कार में गए। वहां के प्रसिद्ध ताल में हमने नाव यात्रा की और कई अन्य राजमहल देखे। उसके बाद हम श्रीलता और महेंद्र के घंटाली स्थित घर में गए। वहां हमने उनके घर के पीछे स्थित ताल में तैराकी की और गांव के बच्चों के साथ मछलियां पकड़ीं।

छुट्टियां खत्म होने पर हम 3-घंटे की यात्रा के बाद ही रतलाम स्टेशन पहुंचे। वहां से मां, मेरे भाई और मैं मुम्बई लौटे और माहिम स्थित नानी के घर पर ठहरे। पर पिताजी रतलाम से दिल्ली गए। मेरे 86 वर्षीय नाना, अच्छी सेहत में थे और हमारे स्वागत के लिए खड़े थे। उस दिन उनका जन्मदिन था इसलिए वे हम सभी को घर के पास एक चाइनीज रेस्ट्रां में खाने के लिए ले गए। जब हम सब लोग तैयार हो गए तो मां ने नाना से पूछा कि हम सब रेस्ट्रां तक कैसे जाएंगे। नाना ने उनसे कहा, 'तुम सबको टैक्सी में लेकर वहां पहुंचो, पर मैं वहां पैदल चलकर ही आऊंगा।' उनका उत्तर सुनकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। खैर हम सबने रेस्ट्रां तक पैदल चलने का निश्चय किया। नानाजी तेजी से आगे-आगे चले और हम पीछे-पीछे। उनके जन्मदिन का भोजन मेरे लिए यादगार रहा।

मेरो मां और दोनों छोटे भाई - समीर और मिलिंद उसके बाद गोवा लौट गए पर मैं अपने नानाजी के पास मुम्बई में कुछ आर दिन रुका। मैं मुम्बई से के लिए सीधा चेन्नई जाने वाला था जहां मैं मकड़ियों, केंचुओं, मगरमच्छों और सांपों की सुखद संगत में ढाई महीने बिताने वाला था।

अध्याय ८

केंचुए

6 नवम्बर को दादर रेल्वे-स्टेशन से शाम सात बजे चलने वाली चेन्नई एक्सप्रेस में मुझे बैठाया गया। स्टेशन पर मुझे ऐलन मामा छोड़ने के लिए आए। उन्होंने सारी जिंदगी रेल्वे में नौकरी की थी इसलिए वे रेलों के बारे में बहुत कुछ जानते थे। मेरी मां ने उनसे मुझे स्टेशन पर छोड़ने की विनती की थी। मां को लगा कि दादर स्टेशन की भीड़-भाड़ में ट्रेन पकड़ पाने का मुझ में आत्मविश्वास नहीं था। उससे पहले नानाजो मुझे टैक्सी में दादर स्टेशन छोड़ने आए थे। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि मेरे पास टिकट, पैसे, खाना और लम्बी यात्रा के लिए पानी की बोतल हो।

मुझे वो रात और पूरा अगला दिन ट्रेन में गुजारना था। मेरी ट्रेन 7 तारीख को रात साढ़े आठ बजे ही चेन्नई पहुंचती। क्योंकि मैं अब कई बार ट्रेनों में अकेले सफर कर चुका था इसलिए इस बार मैं काफी आश्वास्त था। पर फिर भी मैं लगातार अपने सामान पर निगाह लगाए था।

मुम्बई से ट्रेन की यात्रा बिल्कुल सामान्य रही। क्योंकि मुझे खिड़की वाली सीट मिली इसलिए मैं रात को निचली बर्थ पर ही सोया। मेरे आसपास एक घुमंतू कामकाजी परिवार था जो न तो हिन्दी और न ही अंग्रेजी में बोल रहे थे। वे अपने ही कामकाज में मस्त थे। यात्रा क दौरान मैंन तो तो पड़ोसियों से और न ही किसी और से बातचीत की। मैं बस खिड़की के बाहर का नजारा और स्टेशनों की धक्का-मुक्की देखता रहा। इस सबसे ऊबने के बाद मैं सो गया। मेरे पास करीब पांच सौ रुपए थे जो मेरी जीन्स की विभिन्न जेबों में सुरक्षित रखे थे। बकाया पैसे हैवरसैक (पिट्ठू) की अलग-अलग खानों में रखे थे। सोते समय हैवरसैक मेरा तकिया था। मैं अपने साथ जो पानी, भोजन और फल लाया था पूरे रास्ते मैंने उन्हें ही खाया।

ट्रेन तीन घंटे लेट थी और वो चेन्नई सेंट्रल रेल्वे-स्टेशन रात साढ़े ग्यारह बजे पहुंची। स्टेशन पर माता-पिता के पुराने दोस्त श्री के मनोहरन मुझे लेने आने वाले थे। अंकल मानो और आंटी सागू दोनों ने चेन्नई में मेरे रहने का जिम्मा सहर्ष उठाया था जबकि उन दोनों की खुद सेहत ठीक नहीं थी। अंकल मानो मेरा कहां इंतजार कर रहे होंगे यह मुझे मालूम नहीं था। इसलिए मैं उन्हें खाजता हुआ मुख्य द्वार की ओर चला। उन्हें देख कर पहले तो मैं उन्हें पहचान नहीं पाया क्योंकि पिछली मुलाकात के मुकाबले में उनके बाल बहुत ज्यादा सफेद हो गए थे। पर मेरा पीला हैवरसैक देखकर वो मुझे तुरन्त पहचान गए। वो ऑटोरिक्शा में बैठाकर मुझे घर ले गए। मैंने वहां खाना खाया और उसके बाद तुरन्त सो गया। अंकल मानो ने मुझसे अगले दिन घर पर ही आराम करने को कहा। मैंने वही किया - दिन भर टेलीवीजन, फोटो अल्बम देखे और कॉलेज से छुट्टी लेने के पश्चात के अनुभव उन्हें बताए। मैंने उन्हें चेन्नई में अपनी कार्य योजना भी उन्हें बताई।

अगले दिन सुबह-सुबह मैं और मानो अंकल *न्यू कॉलेज* गए जहां डा सुल्तान इल्माइल की केंचुओं की संस्था थी। अगले पंद्रह दिन मुझे वहीं केंचुओं और वर्मीकल्चर का अध्ययन करना था। केंचुओं के बारे में मैं कहां सीखूं - डा भावलकर की पुणे स्थित संस्था या डा इल्माइल की चेन्नई स्थित संस्था में, इस निर्णय को लेने की मुझे छूट थी। मैंने चेन्नई स्थित संस्था इसलिए चुनी क्योंकि मैंने डा इल्माइल को जैविक-खेती की मीटिंग के दौरान कोट्टायम में सुना था और उनका भाषण मुझे बहुत पसंद आया था। दूसरा कारण था - मैं चेन्नई के पास मामल्लापुरम का मगरमच्छ कंद्र देखने जाना चाहता था। इसीलिए केंचुओं के बारे में प्रशिक्षण के लिए मैंने चेन्नई चुना।

अंकल मानो को दिल का दौरा पड़ चुका था और वो बस में सफर नहीं करते थे। फिर भी वो मेरे साथ बस में आए जिससे कि मुझे न्यू कॉलेज का रास्ता पता चल जाए। रास्ते में उन्होंने मुझे प्रमुख स्थानों के बारे में बताया जिससे कि मैं रास्ता भूल न जाऊं। उन्होंने शहरी बस यात्रा के मुझे सामान्य नुस्खे भी समझाए। मुझे इन्हें जल्दी और अच्छी तरह सीखना था क्योंकि भाषा मेरे लिए बड़ी मुश्किल खड़ी कर सकती थी क्योंकि मैं तमिल के दो शब्द भी नहीं बोल सकता था।

कॉलेज में हम डा इल्माइल से मिले और उन्होंने हमें कॉलेज का पूरा कैम्पस दिखाया। फिर हम खेतों में गए जहां केंचुओं क गड्ढे थे। वहां हमने बायोगैस-प्लांट और कूड़ा-कचरा एकत्र करने के गड्ढे, कल्चर के डिब्ब और इस्तेमाल करने योग्य जैविक-खाद भी देखी। मैं वहां काम करने और सीखने को तत्पर था। इसीलिए जब डा इल्माइल - जिन्हें सब 'सर' कहकर संबोधित करते थे ने मुझसे अगले दिन से ही काम शुरू करने को कहा तो मैं बेहद खुश हुआ।

फिर अगले पंद्रह दिनों तक मेरी नियमित रूप से लगभग एक-जैसी दिनचर्या रही। मैं सुबह छह बजे उठता और फिर गर्मागरम इडली, डोसा, सांबर और वडे - जो कुछ भी बनता उसका नाश्ता करके साथ में आंटी सागू द्वारा बनाया दोपहर का भोजन पैक करता। फिर मैं 7 बजे अशोक पिलर से पानागल की बस पकड़ता। पानागल से मुझे एक अन्य बस मिलती जो मुझे न्यू कॉलेज ले जाती। अक्सर मैं साढ़े आठ बजे तक कांलेज पहुंच जाता था और वहां साढ़े तीन से चार बजे तक रुकता था। उसके बाद मेरी यात्रा उल्टी दिशा में शुरू होती थी। मेरे आने-जाने के समय बहुत अच्छे थे इसलिए मैं भीड़ से बच जाता था। मेरे पिताजी ने डा इल्माइल से मुझे व्यावहारिक ज्ञान देने की विनती की थी। इसलिए मेरे कार्यक्रम में किताबों का अध्ययन, नोट्स लेना, दूसरों को देखकर और सीखकर अंत में खुद अपने हाथों से केंचुओं के गड्ढे बनाने थे।

अगले दो दिनों में मैंने केंचुओं और उनकी दुनिया के बारे में डा इल्माइल द्वारा सुझाई ढेरों पुस्तकें पढ़ीं। बाद में मैं विभिन्न प्रजातियों के केंचुओं, उनकी गतिविधियों, रंग और गुणधर्मों का ध्यान से अध्ययन करने लगा। मैंने अलग-अलग तरह की मिट्टियों, उनकी रचना और प्रकृति का भी अध्ययन किया। मुझे एक खास तरीके के कीप (*फनल*) से मिट्टी के नमूने लेना सिखाया गया।

कोई आठ-दस छात्र डा इल्माइल के नेतृत्व में अलग-अलग शोधकार्य कर रहे थे। हम सभी लोग एक बड़े कमरे में काम करते थे। यह कमरा कभी मुख्य पुस्तकालय था। हरेक के काम करने की एक अलग मेज थी। मेरे आने पर मुझे भी एक मेज-कुर्सी दी गई। इस बड़े हॉल में केंचुओं से सम्बंधित पुस्तकों की एक छोटी लाइब्रेरी भी थी। इसलिए काम की किताबें मुझे आसानी से मिल जाती थीं।

मुख्य केंचुओं के गड्ढे नीचे की मंजिल पर थे परन्तु कुछ केंचुए बड़ी क्रेट्स में थे और उन्हें हॉल के बाहर सकरे गलियारे में एक के ऊपर एक करके रखा गया था। यहीं पर हम लोग दोपहर के खाने के लिए इकट्ठे होते थे। अक्सर कोई शोध छात्र उस दिन का कार्य मुझे समझाता और कुछ देर मेरी मदद भी करता। उसके बाद मैं खुद उस काम को पूरा करता था।

संस्था में पंद्रह के प्रवास के दौरान मैंने केंचुओं के माहौल और उनके द्वारा मिट्टी का आकार, नमी, हवा का बहाव आदि तमाम बातों के बारे में सीखा। मैंने मिट्टी में पाए अन्य कई सूक्ष्मजीवियों *'माइक्रोएंथ्रोपॉड्स'* को भी दखा और और सूक्ष्मदर्शी की सहायता से उनके फोटो भी लिए। कोर्स के अंतिम चरण में मैंने अपने हाथों से एक केंचुओं का गड्ढा बनाया। मैं अनुभव के लिए कुछ केंचुए और तिलचट्टे (*कॉकरोच*) भी खाए।

चेन्नई के प्रवास के दौरान कुछ मजेदार बातें भी घटीं। उदाहरण के लिए दूसरे दिन बस में घुसकर मैं खाली सीट की ओर लपका। चेन्नई में टिकट खरीदने के तरीके से मैं अनजान था। गोवा में टिकट कलेक्टर आपके पास टिकट बेंचने आता है, जबकि चेन्नई में आपको टिकट कलेक्टर (जो बस के एक कोने में बैठता है) के पास जाकर टिकट खरीदना पड़ता है। मैं टिकट कलेक्टर के आने का इंतजार कर रहा था इतने देर में दो इंस्पेक्टरों ने आकर मुझे बिना-टिकट यात्रा के लिए पकड़ लिया। उनमें से एक जोर-जोर से मुझ पर तमिल में चिल्लाने लगा। हाथों के इशारों से मैंने उसे समझाया कि मैं गोवा का हूं और मैं तमिल नहीं समझता हूं। मैंने उसे बताया कि मैं पहली बार चेन्नई में बस यात्रा कर रहा हूं। फिर भी उसने मुझ पर पच्चीस रुपयों का जुर्माना ठोका। भाग्यवश मेरे पास पैसे थे और मैंने उनका भुगतान किया। पर जब मैं बस से नीचा उतरा तो मैंने अपने पर्स को गायब पाया। कोई जेबकतरा हाथ साफ कर गया था!

एक बार मैं बस के फुटबोर्ड पर खड़ा था। मैंने लोगों को खचाखच भरी बस में डंडा पकड़कर यात्रा करते देखा था। इसलिए मुझे यह सही लगा। पर जब बस ने स्पीड पकड़ी तो मेरे लिए डंडा पकड़े रहना बहुत मुश्किल हो गया क्योंकि अनेक लोगों का भार मुझे खींच रहा था। अब मैं एक हाथ से डंडा पकड़े बस के बिल्कुल बाहर लटका हुआ था। उस दिन मैंने कसम खाई कि मैं कभी भी बस के फुटबोर्ड पर खड़े होकर सफर नहीं करूंगा।

मैं कई बार रास्ता भी भूला। पर सही निर्देशों के लिए मैंने कभी फोन नहीं किया। मैं इधर-उधर घूमता-भटकता, लोगों से पूछ कर किसी पहचानी जगह पर आ जाता और वहां से घर पहुंचता। अक्सर मैं अपनी मंजिल से पहले के बस-स्टाप पर उतर जाता था। एक बार रेड-लाईट पर धीमी हुई बस से मैं कूद कर उतर गया। फिर मुझे अपनी मंजिल तक पैदल-पैदल पहुंचने में कोई आधा घंटा लगा।

अंकल मानो और आंटी सागू ने मुझे बहुत लाड़-प्यार से रखा। मैंने अपने आलसी आचरण और व्यवहार से उन्हें काफी परेशान किया होगा। अंकल मानो रोज न नहाने के लिए मुझ पर खीजते थे। जब मैं नहाने जाता तो गुसलखाने में घंटों बैठा रहता था। धुले कपड़े पहने से भी उन्हें बहुत गुस्सा आता था।

आंटी सागू द्वारा पकाया भोजन मुझे बहुत पसंद आता था। आंटी और अंकल ने देखा कि जिस दिन मुर्गी या मछली पकती, उस दिन मैं बहुत खाना खाता। पर जिस दिन शाकाहारी खाना बनता उस दिन मैं बहुत कम खाता। सादा खाना मुझे पसंद नहीं था इससे वे चिढ़ते थे। मैं काफी आलसी था और कॉलेज से लौटन के बाद सोफे पर धम्म से लेटकर टेलीवीजन के चैनल पलटता रहता था। मेरी यह खराब आदतें उन्हें नापसंद थीं। अपने व्यवहार से मैंने शायद उन्हें काफी परेशान किया होगा। फिर भी उन्होंने मेरी बहुत अच्छी

देखभाल की। उनके आतिथ्य की वजह से ही मैं केंचुओं, मकड़ियों और मगरमच्छों की संस्थाओं में जाकर ढेरों नई बातें सीख पाया। मैं उनका दिल से धन्यवाद अदा करता हूं। मुझे आशा है कि इस पुस्तक को पढ़ने के बाद वो मेरी सारी गल्तियों को माफ कर देंगे।

डायरी के अंश

केंचुए

10 नवम्बर: 'सर' ने मुझे केंचुओं पर एक पुस्तक पढ़ने को दी और उसके बाद जगन मुझे खेत में ले गया। वहां मैं केंचुओं के अलावा भी कई सूक्ष्मप्राणी देख पाया। हमने एक स्थान से मिट्टी का सैम्पल लिया और प्रयोगशाला में आकर उस नमूने को एक *टुलग्रेन फनिल* (कीप) में रखा। मैं फिर दुबारा जाकर केंचुओं के गड्ढे से तीन और नमूने लेकर आया। इन्हें भी हमने अलग-अलग *टुलग्रेन फनिल्स* में रखा। तब तक खाने का समय हो गया और हम सबने मिलकर दोपहर का भोजन किया। खाने के बाद मैंने मिट्टी के नमूनों का भार तोला और तब मैं *टुलग्रेन फनिल* के नीचे के बीकर के सूक्ष्मप्राणियों को भी देख पाया। साढ़े तीन बजे मैं घर गया।

11 नवम्बर: सुबह मुझे दो प्रकार के केंचुए - *लैम्पीटो मारूती* और *पेरियोनिक्स एक्सवेटस* दिए गए और उसना अवलोकन करने को कहा गया। मैंने पूरी सुबह यही काम किया। दोपहर के खाने के बाद मैंने अपने अवलोकनों को लिखा। शाम को हम कॉलेज के खेल के मैदान और होस्टल के पास भी कुछ अवलोकन करने गए। हमने दो गड्ढे 25-सेमी लम्बे, चौड़े और ऊंचे खोदे। एक खेल के मैदान और दूसरा होस्टल के पास था। हमने कई अवलोकन किए और केंचुओं की संख्या और उनकी प्रजातियों को नोट किया। केंचुए '*सिलियेट*' थे या नहीं यह भी हमने दर्ज किया। हमने वहां की मिट्टी, हवा का तापमान और नमी भी नापी। फिर हमने प्रयोगशाला में जाकर मिट्टी में कितनी नमी थी इसके सैम्पल भी इकट्ठे किए।

12 नवम्बर: सुबह मैं रोज की तरह न्यू कॉलेज के लिए रवाना हुआ। मुझे बताया गया कि 'सर' आज वायरल फीवर (बुखार) के कारण नहीं आएंगे। पिछले दिन एक शोधछात्र का देहांत हो गया था इसलिए उसकी याद में एक शाकसभा आयोजित की गई थी। उसके बाद छुट्टी की घोषणा हुई और सभी लोग अपने-अपने घर वापस चले गए। मैं साढ़े दस बजे घर वापस पहुंचा। मैं पहले नहाया और उसके बाद मैंने भोजन किया। फिर मैंने कुछ देर टेलीविजन देखा और फिर अपनी डायरी लिखी। उस रात अंकल मानो और आंटी सागू ने कुछ मेहमानों को आमंत्रित किया था। उस रात चिकन बनी जो मुझे बहुत स्वादिष्ट लगी।

14 नवम्बर: 'सर' आज भी नहीं आए। जगन के साथ मैंने *इंफ्रारेड मौइस्चर बैलेन्स* की मदद से उन मिट्टी के नमूनों में नमी की गणना की जिन्हें हमने शनिवार को इकट्ठा किया था। एक सैम्पल खत्म करने के बाद बिजली का वोल्टेज अचानक लड़खड़ाने लगा इसलिए हमने *टुलग्रेन फनिल* का उपयोग किया। फिर जगन में मुझे होस्टल के पास से कुछ मिट्टी के नमूने लाने के लिए भेजा। हमने नमूनों को *टुलग्रेन फनिल* में रखा और देखा कि छोटे सूक्ष्मप्राणियों (*एंथ्रोपौड्स*) *कम्पाउंड माइक्रोस्कोप* (सूक्ष्मदर्शी) के नीचे बीकर में गिरते हुए देखा। हमने कुछ संरक्षित सूक्ष्मप्राणियों (*एंथ्रोपौड्स*) को भी देखा।

15 नवम्बर: आज मैंने 100-ग्राम मिट्टी के सैम्पल को बारीक कूटा और फिर उसे पांच अलग-अलग छलनियों से छाना। मैंने हरेक भाग का वजन भी तोला और उसे नोट किया।

16 नवम्बर: सुबह के समय मैंने मिट्टी को छाना। शाम के समय मैंने '*कीनकप्स*' विधि द्वारा मिट्टी की पानी सोखने की क्षमता को मापा।

18 नवम्बर: आज सुबह 'सर' आए। सुबह के समय मैंने लाइब्रेरी में कुछ समय पुस्तकें पढ़ीं। फिर मैंन मिट्टी छानी और मिट्टी को बनसन बर्नर पर जलाया। शाम के वक्त मैंने '*जूनियर शायलौक*' नाम की फिल्म देखी।

19 नवम्बर: मैंने अपनी रिपोर्ट लिखनी शुरू की। शाम को बाबू के साथ फिल्म रील लेने बाजार गया। मुझे अपनी रिपोर्ट के लिए फोटो खींचनी थीं।

20 नवम्बर: आज मैंने मिट्टी के दूसरे सैम्पल को जलाया। उसके बाद जगन सर के साथ मिलकर मैंने कम्पाउंड माइक्रोस्कोप से (*एंथ्रोपौड्स*) सूक्ष्मजीवियों के फोटो खींचे। इस सूक्ष्मदर्शी में फोटो लेने के लिए एक कैमरा फिट होता है। दोपहर के भोजन के बाद मैंने एक छात्र द्वारा पेश की प्रस्तुति को सुना।

21 नवम्बर: सुबह के समय मैंने *पेरियोनिक्स एक्सवेटस* प्रजाति का केंचुआ खाया। फिर मिट्टी के पानी सोखने की क्षमता को जानने के लिए अलग-अलग मिट्टियों की जांच की और उन्हें जलाया। मैंने विभिन्न मिट्टियों के आकार (*टेक्सचर*) की गणना करना भी सीखा। साथ-साथ मैं अपनी रिर्पोट भी लिखता रहा।

22 नवम्बर: आज मैंने अपनी रिपोर्ट के अंतिम हिस्से लिखे। फिर मैंने रिपोर्ट को जांचने के लिए चित्रा को दिया। चित्रा ने रिपोर्ट जांचने के बाद 'सर' को दी जिन्होंने उसमें कुछ आर सुधार किए।

23 नवम्बर: आज मैंने अपनी रिपोर्ट को दुबारा एक नई नोटबुक में लिखा। फिर जगन और मैंने मिलकर रिक्त स्थानों पर फोटो चिपकाईं। फिर 'सर' ने मुझे से खुद अपने हाथों से केंचुओं का गड्ढा बनाने को कहा।

24 नवम्बर: आज मैंने अपनी नोटबुक में बकाया चित्र बनाए। फिर मैंने 'सर' की सहमति के लिए उन्हें नोटबुक दिखाई। उन्होंने मुझसे हरेक फोटोग्राफ के लिए चंद लाइनं लिखने को कहा। उन्होंने कहा कि मैं अपनी नोट-बुक को एक हफ्ते के बाद लेकर जा सकता हूं। उसके बाद मैंने सब से अलविदा कहा और साढ़े चार बजे घर के लिए रवाना हुआ।

दस दिनों बाद....

05 दिसम्बर: आज छुट्टी थी इसलिए मुझे अपनी नोट-बुक लेने के लिए न्यू-कॉलेज जाना था। मैंने नोट-बुक 'सर' के हस्ताक्षरों के लिए दी थी। वहां मैं अपने सभी मित्रों से मिला। सभी ने नोट-बुक पर अपनी-अपनी टिप्पणियां लिखीं और उसके बाद उस पर मुहर लगी। 'सर' ने मुझे संस्था से केंचुओं का कोर्स समाप्त करने के लिए एक सर्टिफिकेट भी दिया। उसके बाद चित्रा ने अपनी फिएट कार में मुझे पनागल बस-स्टाप तक छोड़ा।

केंचुओं की खेती पर फील्ड-नोट्स

कूड़ा-कचरे से सोना बनाना

केंचुओं द्वारा पैदा की गई खाद और '*वर्मीवाश*' आजकल बहुत लोकप्रिय हैं। साधारण जैविक कचरे में किचिन का कूड़ा, मृत पौधे आदि होते हैं जिन्हें केंचुओं की मदद से जैविक खाद में बदला जाता है।

केंचुए

केंचुए तीन प्रकार के होते हैं। पहले – *एपीजियक* या सतह पर रहने वाले केंचुए (*पेरियोनिक्स एक्सवेटस*) जो मिट्टी की ऊपर तह में मौजूद केवल जैवक कचरा ही खाते हैं। दूसर – *एनीसिक* केंचुए (*लैम्पीटो मारूती*) जो भी मिट्टी की ऊपरी तह में होते हैं और वे सड़े पत्ते और कूड़ा खाते हैं। तीसरे – *एंडोजियक* यानि मिट्टी के अंदर गहराई में रहने वाले केंचुए (*आक्टोचैटोना थ्रीरीटोनिस*)।

खाद बनाने या वर्मीकल्चर के लिए सबसे ज्यादा लोकप्रिय *एपीजियक* और *एनीसिक* केंचुएं हैं। *पेरियोनिक्स एक्सवेटस* केंचुएं कत्थई-लाल रंग के और खुरदुरे होते हं। दोनों छोरों पर *पेरियोनिक्स एक्सवेटस* लगभग काला होता है। वो *लैम्पीटो मारूती* की तुलना में छोटे (10-सेमी) और पतले होते हैं पर अधिक सक्रिय होते हं। उनमें प्रजनन *लैम्पीटो मारूती* की तुलना में ज्यादा तेजी से होता है। *लैम्पीटो मारूती* का रंग सिलेटी-सफेद होता है। वो *पेरियोनिक्स एक्सवेटस* की तुलना में चमकीले, मोटे और लम्बे (15-सेमी) होते हं।

केंचुओं को ठंडा तापमान, गीली मिट्टी, नमी, कम धूप और न खुरदरी और न ही चिकनी रेत पसंद है। केंचुओं से खाद बनाने के काम में इन सब आदर्श परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए। क्योंकि केंचुए अपनो त्वचा से सांस लेते हैं इसलिए नमी या *म्यूकस* सूखने पर वे मर जाते हैं। इसलिए केंचुओं को जिंदा रखने के लिए यह बहुत जरूरी है कि वहां पर्याप्त मात्रा में नमी हो। वैसे केंचुओं को बहुत अधिक पानी वाले दलदल पसंद नहीं हैं। अगर केंचुओं को पानी में बहुत देर तक रखा जाए तो उनके मल से निकले अमोनिया से पानी इतना विषैला हो जाता है कि केंचुओं उसमें खुद जिंदा नहीं रह पाते हैं। केंचुए नमक या नमकीन पानी को थोड़े समय के लिए भी बरदाश्त नहीं कर पाते हैं।

केंचुए द्विलिंगीय होते हैं। केंचुओं की अधिकांश प्रजातियों का जीवनकाल छह महीने से एक साल के बीच होता है। व्यस्क केंचुए संभोग के बाद त्वचा का छोटा भाग त्याग देते हैं और *ककून* (कोया) पैदा करते हैं जिन्हें किशोरावस्था तक विकसित होने में चौदह दिनों का समय लगता है। एक *ककून* से ज्यादा-से-ज्यादा तीन किशोर पैदा हाते हैं। केंचुओं को किशोरावस्था से पूर्ण व्यस्क बनने में 15-18 दिनों का समय लगता है। इसलिए केंचुए अपने जीवनकाल में बहुत ज्यादा संतानें पैदा कर सकते हैं। इसीलिए केंचुए कूड़े-कचरे को खाद बनाने के लिए आदर्श जीव हैं।

वर्मीकम्पोस्ट (केंचुओं की खाद)

गड्ढा, ए प्लास्टिक या लकड़ी की क्रेट या एक बाल्टी को भी *वर्मीकम्पोस्टिंग* के काम में लाया जा सकता है। आप चाहें तो दो क्रेटों को भी इकट्ठा उपयोग कर सकते हैं। एक में ताजा कचरा रखें और दूसरे में कचरे को सड़ने दें।

पहले 6-8 छेद बनाएं – चार क्रेट के चारों कोनों में और चार छेद बीच में। मटके या बाल्टी में 3-5 छेद बनाएं। क्रेट या मटके में सबसे पहले एक इंच ऊंचाई तक रोड़ी या टूटी ईंटे भरें। उसके ऊपर 5-6

इंच मोटी मिट्टी की तय बिछाएं। फिर उसमें *पेरियोनिक्स एक्सवेटस* या *लैम्पीटो मारूती* केंचुए डालें। मिट्टी को पानी से गीला करें। कुछ गोबर (नाईट्रोजन) और लकड़ी का कोयला (कार्बन) भी डालें। फिर क्रेट को 20-30 दिनां तक उसी स्थिति में छोड़ दें। इसे *वर्मीबेड* कहते हैं। गोबर और लकड़ी के कोयले से केंचुओं की संख्या बढ़ेगी। इससे *वर्मीकम्पोस्ट* की क्रेट जैविक कचरे को खाद में बदलने की प्रक्रिया के लिए तैयार हो जाएगी।

जैविक कचरे को बराबर ऊंचाई में क्रेट के ऊपर फैलाएं। जहां तक सम्भव हो नियमित रूप से थोड़ा-थोड़ा कचरा ही डालें। एक साथ बहुत अधिक कचरा नहीं डालें। उससे केंचुए तुरन्त कचरे को खाने में जुट जाएंगे। समय-समय पर क्रेट में पानी छिड़कें जिससे कि वर्मीबेड नम रहे। एक बार जब क्रेट पूरी तरह कचरे से भर जाए तो उसे मिट्टी से ढंक कर कचरे को सड़ने के लिए वैसे ही छोड़ दें। समय-समय पर पानी छिड़कना न भूलें। अगले 45 दिनों में कचरा पूरी तरह सड़कर खाद बन जाएगा। तब 4-5 दिनों के लिए पानी छिड़कना बंद करें। इससे केंचुए क्रेट के निचले भाग में चले जाएंगे। फिर आप ऊपर से कचरे की जैविक खाद को निकालें। वर्मीबेड को हिलाएं-डुलाएं नहीं। इस जैविक-खाद को आप पौधों के लिए उपयोग कर सकते हैं।

वर्मीवाश

किसी ड्रम या बाल्टी को वर्मीवाश बनान के लिए उपयोग किया जा सकता है। ड्रम या बाल्टी को जमीन से कुछ ऊपर रखें। बर्तन के पेंदे में एक छेद बनाएं। इस छेद में एक पाईप फिट करें और पाईप के दूसरे सिरे पर एक टोटी लगाएं।

बर्तन के पेंदे पर 6-8 इंच मोटी कंकड़ों की तह बिछाएं। उसके ऊपर 6-8 इंच मोटी रेत की तह बिछाएं। फिर केंचुओं को डालें और थोड़ा पानी छिड़कें। फिर थोड़ा गोबर और लकड़ी का कोयला मिलाकर बिछाएं। इसे कुछ दिनों के लिए वैसे ही छोड़ दें।

जब कभी भी वर्मीवाश की जरूरत हो तो फव्वारे से पानी छिड़कें या फिर हल्के से पानी डालें (150-लीटर के ड्रम में 5-लीटर पानी डालें)। यह पानी केंचुओं के घरों और गुफाओं और जैविक मिट्टी से रिसकर बाहर निकलेगा। इसे ड्रम में नीच से एकत्रित किया जा सकता है। जैसे-जैसे गोबर और लकड़ी के कोयले की मात्रा कम हो उन्हें दुबारा वापस डालें।

निष्कर्ष

प्रकृति में कूड़ा-कचरा उसी प्रकार सड़ता है जैसा कि वर्मीकम्पोस्ट के गड्ढे में होता है। कचरे में पेड़-पौधों के पत्ते, टहनियां, छाल, सड़ी लकड़ी, फूल, फल और अन्य पेड़ और जीव होते हैं। यह सब जमीन पर गिरते हैं और ओस या बारिश से गीले होते हैं। फिर सूक्ष्मजीवियों (*माइक्रोब्स*) फफूंद और *माइक्रोएंथ्रोपॉड्स* सड़ाने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं।

माइक्रोएंथ्रोपॉड्स दो प्रकार के होते हैं - *डेट्रिवोरस* जो कचरे को खाते हैं। यह वो कचरा है जिस पर माइक्रोब्स और फफूंद आक्रमण करते हैं। बाकी शिकारी इन *डेट्रिवोरस* को खाते हैं। जो कचरा सड़ता नहीं है - जैसे मृत *माइक्रोब्स* और *माइक्रोएंथ्रोपॉड्स* वो अपने मल के साथ मिलकर धरण (*हयूमस*) बनाते हैं। यह धरण एक जटिल पदार्थ होता है और वो पौधों को इस्तेमाल के लिए उपलब्ध नहीं होता है। इस स्थिति में केंचुओं का राल बहुत अहम हो जाता है। मिट्टी में मौजूद केंचुए इस धरण (*हयूमस*) को खाते हैं। केंचुओं

के मल में बहुत से पौष्टिक तत्व होते हैं जिन्हें पौधे अपने विकास के लिए आसानी से उपयोग कर सकते हैं। पौधे और पेड़ अपने झड़े पत्तों द्वारा या फिर मरने के बाद उस कचर की मात्रा बढ़ाते हैं जिन्हें *माइक्रोब्स* और फफूंद खा सकते हैं। इस प्रकार प्रकृति का चक्र पूरा होता है।

केंचुओं ने साबित करके दिखाया है कि वो अद्‌भुत जीव है जो सचमुच कचरे को सोने में बदलते हैं।

अध्याय ९

मकड़ियां

वर्मीकल्चर का अध्ययन करने के बाद मैंन 15 दिन डा के विजयालक्ष्मी के साथ गुजारे। मेरे पिताजी उन्हें भारतीय '*स्पाइडर वूमन*' के नाम से बुलाते हैं। डा विजयालक्ष्मी तिलचट्टों की आबादी पर पाबंदी लगाने के लिए मकड़ियों का उपयोग करती हैं। उनका कार्यस्थल अलग-अलग किस्म की मकड़ियों से भरा पड़ा है। उनकी निगरानी में मकड़ियों को बोतलों में पैदा किया जाता है। वो मकड़ियों की विशेषज्ञ हैं और उन्होंने इस विषय पर एक लोकप्रिय पुस्तक भी लिखी है।

मैं बेसब्री से अपने माता-पिता के टेलीफोन का इंतजार कर रहा था। मैं *क्रोकोडाइल बैंक* जाना चाहता था और वे उसके लिए स्वीकृति की कोशिश कर रहे थे। तभी पिताजी का फोन आया कि *क्रोकोडाइल बैंक* का कार्यक्रम अभी भी पक्का नहीं हुआ है और मैं अगले दस दिनों तक डा विजयालक्ष्मी के पास जा सकता हूं और उनसे मकड़ियों के बारे में सीख सकता हूं। मैंने इसके लिए तुरन्त सहमति दे दी।

डा विजयालक्ष्मी और उनके पति दोनों एक संस्था में काम करते हैं - *सेंटर फॉर इंडियन नॉलिज सिस्ट्म्स* (सीआईएसके)। सीआईएसके एक छोटी इमारत में स्थित है और डा विजयालक्ष्मी का दफ्तर पहली मंजिल पर है। वहां वो उन पौधों का अध्ययन और शोधकार्य करती हैं जिन्हें कीटनाशक के रूप में इस्तेमाल किया जा सके। पर मुझे उनके इस शोधकार्य में खास रुचि नहीं थी।

इमारत के गैरज में मकड़ियों का कमरा था। वहां अनेकों अलग-अलग किस्म की मकड़ियां भिन्न-भिन्न विकास के चरणों में, बोतलों में रखीं थीं। जब मैं वहां गया तब वहां कम-से-कम 500 पारदर्शी प्लास्टिक की बोतले होंगी। सभी पर लेबिल चिपके थे और हरेक के अंदर मकड़ियां थीं। हरेक बोतल के ढक्कन में छोटे-छोटे छेद थे। खाना डालने के लिए ढक्कन में ही एक और छोटा था जिसमें रुई ठूंसी गई थी। मकड़ियों के विकास, केंचुली बदलने, संभोग और नए बच्चों के जन्म की सारी प्रक्रियाओं पर डा विजयालक्ष्मी ध्यान रखती थीं। सेल्वन उनका सहयोगी था और वो उनके सभी निर्देशों का पालन करता था। वो सारे रिकार्ड रखता था और सभी घटनाओं को एक नोट-बुक में दर्ज करता था।

मैंने पंद्रह दिन डा विजयालक्ष्मी के साथ काम किया। मैंने वहां उनके द्वारा सुझाई मकड़ियों पर अनेकों पुस्तकें पढ़ीं। फिर मैंने अलग-अलग प्रजातियों की मकड़ियों को पहचानना सीखा और साथ-साथ सेल्वन द्वारा किए सभी कामों में उसकी मदद की - जिसमें गैरिज में रखी ढेरों मकड़ियों की देखरेख शामिल थी।

डा विजयालक्ष्मी जिन मकड़ियों का अध्ययन करती हैं उन्हें *जायंट क्रैब स्पाइडर* यानि विशाल केंकड़ा मकड़ियों के नाम से जाना जाता है। यह मकड़ियां अपना जाल नहीं बनाती हैं। वे केवल तिलचट्टे यानि *कॉकरोच* खाती हैं। यह मकड़ियां अपने शिकार यानि *कॉकरोच* स छोटी होती हैं। मैं इन मकड़ियों के बच्चों को अलग-अलग करता, उन्हें खिलाता, उनकी केंचुली देखता और उनके भोजन के लिए मक्खियां पकड़ता था। मैंने यहां पर बहुत सारी पुस्तकें पढ़ीं और बगीचे में तमाम मकड़ियां पकड़ी जिससे कि मैं उन्हें पहचान कर उनका अध्ययन कर सकूं।

मकड़ियां शत्रु नहीं मित्र होती हैं।

इस गैरज में केवल मकड़ियां रखी गई थीं। वहां पर तिलचट्टों की भी खेती होती थी। बाल्टियों में एक बेलनाकार गत्ता रखा जाता था और फिर बाल्टी में बिस्कुट के टुकड़े डाल दिए जाते थे। हफ्ते में एक बार इन तिलचट्टों को *जायंट क्रैब स्पाइडरों* को खिलाया जाता था।

छोटी मकड़ियों को मक्खियां खिलाई जाती थीं जिन्हें हम रोजाना बगीचे में जाकर पकड़ते थे। जिंदा मक्खियां ही मकड़ियों को खिलाना होती हैं। हम मक्खियां को फंसाने के लिए पारदर्शी प्लास्टिक की बोतलों का प्रयोग करते थे। मक्खी को पकड़ने के बाद हम बड़ी सावधानी से उसे मकड़ियों की बोतल में डालते थे। कभी-कभी मकड़ी तुरन्त अपने शिकार को पकड़ कर खा जाती थी, और कभी मक्खी हफ्तों तक बोतल में मंडराती और उड़ती रहती थी और उसके बाद ही मकड़ी उसे खाती थी।

डा विजयालक्ष्मी एक विशेष प्रकार को मक्खी को छोटे पिंजड़ों में विकसित करती थीं। पिंजड़ों के ऊपर महीन जाली लगी होती थी और मक्खियों के विकास के लिए अंदर के कटोरी में दूध रखा रहता था।

मकड़ियों के बच्चों को अलग-अलग बोतलों में रखा जाता था और उन्हें मक्खिओं के लार्वा या फिर पुरानी मैदा या रवा में पैदा हुए कीड़े खिलाए जाते थे।

इन सब प्रयोगों के पीछे एक उद्देश्य - यह जानना था कि कौन सी मकड़ियां तिलचट्टों को खा सकती हैं, जिससे उन्हें खत्म करने क लिए रायायनिक कीटनाशक नहीं इस्तेमाल करने पड़ें। इसके लिए मकड़ियों के विकास, वद्धि दर, भोजन प्रजनन के बारे में जानकारी जरूरी थी। उससे यह पता चलता कि किन प्रजातियों की मकड़ियों को घरों में तिलचट्टे खाने के लिए रखा जा सकता था।

मकड़ियों के बारे के जानने के साथ-साथ मैं सेल्वन से तमिल सीखने को इच्छुक था और वो मुझ से अंग्रेजी सीखना चाहता था। पर हम दोनों ही एक-दूसरे की भाषा सीखने में असमर्थ रहे और तमिल-अंग्रेजी की खिचड़ी में ही बतियाते रहे।

डायरी के पन्ने

मकड़ियां

26 नवम्बर: अंकल मानो और मैं सुबह साथ बजे डा विजयालक्ष्मी के आफिस की तरफ रवाना हुए। अंकल और मैडम जब एक-दूसरे से बातचीत कर रहे थे तब तक मैंने कुछ किताबें पढ़ीं। उसके बाद मैडम ने हमें मकड़ियों का संग्रह दिखाया। उन्होंने मेरा परिचय सेल्वन से कराया। हमारे वापस लौटने से पहले उन्होंने मुझे घर पर पढ़ने के लिए कुछ पुस्तकें दीं।

27 नवम्बर: सेल्वन मकड़ियों के बच्चों को मां से अलग करके हरेक को अलग डिब्बे में रख रहा था। कुल मिलाकर 110 बच्चे थे। फिर हमनें 200 कुछ बड़े पिल्लों को भोजन दिया। सेल्वन ने मुझे उनकी '*मोल्टिंग*' (केंचुली उतारने) की विधि भी समझाई।

28 नवम्बर: आज मैंने खुद मकड़ियों के पिल्लों को भोजन दिया। फिर मैंने उन्हें एक डिब्बे से दूसरे में रखा और उन्हें खाना खिलाया।

29 नवम्बर: आज मैंने केवल मकड़ियों के पिल्लों को भोजन खिलाने का काम किया। बीमार होने के कारण आज मैडम आफिस नहीं आयीं परन्तु उनके पति डा बालासुब्रामनियम हमारे काम को देखने आए।

दोपहर में मैंने मकड़ियों पर कुछ पुस्तकें पढ़ीं। उस दिन मैं जल्दी ही घर गया क्योंकि अंकल मानो और आंटी सागू कुछ दिनों के लिए बाहर जा रहे थे और मुझे उनके रिश्तेदार संतोष कुमार के घर पर रहना था। वो लोग साढ़े सात बजे चले गए और मैं उनके पड़ोसी से घर पर संतोष के आने का इंतजार करता रहा। रात नौ बजे संतोष मुझे लेने आए।

30 नवम्बर: रविवार होने के कारण मैं सुबह देर से उठा और मैंने इडली, डोसे और सांभर का नाश्ता किया। मैंने दो दिनों के काम को अपनी डायरी में लिखा और फिर कुछ समय तक टेलीवोजन देखा। शाम को संतोष मुझे बस-स्टैंड ले गया और मुझे आफिस के लिए कौन सी बस सुबह पकड़नी है उसके बारे में मुझे बताया।

1 दिसम्बर: आज मैडम आफिस आयीं और उन्होंने मुझे आफिस के बगीचे में से मकड़ियां पकड़ने की विधि दिखाई। उन्होंने मुझे मकड़ियों के बारे में पढ़ने के लिए कुछ और साहित्य दिया और मुझ से मकड़ियों पर एक निबन्ध लिखने को कहा। कुछ देर मकड़ियों को भोजन खिलाने के बाद मैं बाहर गया और खुद कुछ मकड़ियों के नमूने पकड़ कर लाया। फिर मैडम ने उन्हें पहचानने में मेरी मदद की। उनके द्वारा पकड़ी कुछ मकड़ियों को भी मैंने पहचाना। दोपहर के बाद मैंने मकड़ियों को खिलाने के लिए मक्खियां पकड़ीं।

2 दिसम्बर: आज मैंने सिर्फ अलग-अलग प्रजातियों की मकड़ियों को पहचाने का काम किया। मैं पढ़ने के लिए कुछ साहित्य लेकर जल्दी घर चला गया। मैं बस में इस साहित्य को पढ़ता रहा और जिस बस-स्टाप पर मुझे उतरना था उसका मुझे कुछ ध्यान ही नहीं रहा। बस ने मुझे बहुत आगे छोड़ा और फिर मुझे घर वापस लौटने के लिए आधे घंटा चलना पड़ा। मैंने लोगों से रास्ता पूछा और फिर खोजते हुए बस टर्मिनस पहुंचा।

3 दिसम्बर: तबियत कुछ खराब होने के कारण आज मैं आफिस नहीं गया। मैं जो पुस्तकों को लाया था उन्हें मैंने पढ़ा और अपनी रिपोर्ट भी लिखनी शुरू की।

4 दिसम्बर: रोज की तरह आज भी मैंने मकड़ियों को खिलाने का काम किया। फिर मैंने 70 मक्खियां पकड़ीं और उन्हें व्यस्क मकड़ियों को खिलाया। दो मकड़ियों ने संभोग किया और मैंने उसके नोट्स लिखे। शाम को मैंने अपनी रिपोर्ट पर आगे काम किया।

5 दिसम्बर: आज मैं न्यू कॉलेज से अपनी *वर्मीकल्चर* की रिपोर्ट लेने गया।

6 दिसम्बर: पहले मैंने मकड़ियों के पिल्लों को खिलाया, फिर मक्खियां पकड़ीं। एक मादा मकड़ी के अंडों में से पिल्ले निकले तब मैंने और सेल्वन ने पिल्लों को अलग कर उन्हें अलग-अलग डिब्बों में रखा।

7 दिसम्बर: मैंने आज अपनी रिपोर्ट लिखी और उसे सुधारने के लिए मैडम को दी। सुधरी रिपोर्ट को मैंने दुबारा सफाई से लिखना शुरू किया। मैंने शाम से पहले रिपोर्ट खत्म करके उसे मैडम के अनुमोदन के लिए छोड़ दी।

8 दिसम्बर: पेट खराब होने के कारण मैं आज आफिस देरी से गया। मैडम ने अपने हस्ताक्षर करके मुझे रिपोर्ट वापस की और साथ में एक सर्टिफिकेट भी दिया। शाम तक मेरी तबियत ठीक नहीं हुई थी और अगले दिन मुझे मगरमच्छ केंद्र जाना था।

फील्ड-वर्क नोट्स

मकड़ियां

आजकल ज्यादातर लोग तिलचट्टों को मारने के लिए '*बेगॉन स्प्रे*' या किसी अन्य कीटनाशक का उपयोग करते हैं। पर असल में यह कीटनाशक क्या करते हैं? कीटनाशकों से तिलचट्टों में और प्रतिरोध पैदा होता है। वैसे भी यह कृत्रिम रासायन बहुत खतरनाक होते हैं और पर्यावरण को नुकसान पहुंचाते हैं। अगर किसी जैविक विधि द्वारा इन कीटों पर काबू पाया जा सकता तो बहुत अच्छा होता। मकड़ियां इस काम के लिए बहुत उपयुक्त हैं।

मकड़ी कीडा नहीं होती है। कीड़ों को एक सिर, छाती का भाग (*थोरैक्स*) और पेट होता है। उनकी *कम्पाउंड* आंखें होती हैं और छह पैर होते हैं। विकास के एक चरण में उनके पंख और एंटीना भी होते हैं। कीड़े अंडे देते हैं जिनसे पिल्ले निकलते हैं जो देखने में अपने माता-पिता से बिल्कुल भिन्न होते हैं। उनके किशोर, रूपान्तर (*मेटामॉरफोसिस*) की प्रक्रिया से बढ़ते हैं।

दूसरी ओर मकड़ी एक *एंथ्रोपौड* है जिसकी छाती का भाग पेट से जुड़ा होता है। विकास के किसी भी चरण में उसके पंख नहीं उगते हैं। उसके आठ पैर होते हैं। कीड़ों के एंटेना होते हैं जबकि मकड़ियों के '*पेडीपैल्पस*' होते हैं। सामान्यत: मकड़ियों की आठ सरल आंखें होती हैं पर '*स्पिटिंग स्पाइडर*' (यानि थूकने वाली मकड़ी) की छह आंखें भी हो सकती हैं। मकड़ियों की प्रजातियों के अनुसार उनको आंखों से स्पष्ट या धुंधला दिखाई दे सकता है। गुफाओं में रहने वाली मकड़ियां अक्सर पूर्णत: अंधी होती हैं। मकड़ियों का जीवनकाल उनकी प्रजाति पर निर्भर करता है जो चंद महीनों से लेकर दस साल से अधिक हो सकता है।

अधिकांश मकड़ियों के उपांग विषैले डंकों में परिवर्तित हो जाते हैं। पर केवल कुछ ही मकड़ियों के डंक मनुष्य की त्वचा में छेद करने में सफल होते हैं। ज्यादातर मकड़ियां इंसानों को कोई गंभीर नुकसान नहीं पहुंचाती हैं। पर मकड़ियों की चार-पांच प्रजातियां बेहद जहरीली और खतरनाक होती हैं।

उदाहरण के लिए दक्षिणी अमरोका मं पाई जाने वाली '*ब्लैक विडो*' दुनिया की सबसे विषैली मकड़ी है। इस प्रजाति की मादा के विष से इंसान तुरन्त मर सकता है। यह मादा संभोग के बाद अपने नर साथी को मार के खा जाती है। इसीलिए उसका नाम 'काली विधवा' बहुत ही उपयुक्त है। यह मकड़ी चमकीली और काली होतो है और उसके पेट पर लाल रंग का '*सैंड आवर ग्लास*' जैसा निशान होता है। भाग्यवश भारत में मनुष्यों को गंभीर रूप से हानि पहुंचाने वाली मकड़ियां नहीं होती हैं।
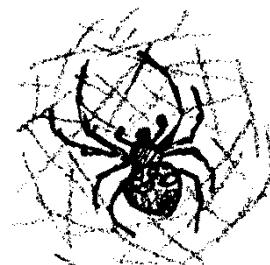
दुनिया में मकड़ियों की कुल लगभग तीस हजार प्रजातियां पाई जाती हैं। मकड़ियां एवरेस्ट की 23000 फीट की ऊंचाई से लेकर समुद्र के अंदर भी पाई जाती हैं।

लगभग सभी मकड़ियां मांसभक्षी होती हैं। वे कीड़े, छोटी चिड़िए, स्तनपाई और सृरीसर्प के साथ-साथ जहरीले सांपों और अन्य मकड़ियों को भी खाती हैं। सबसे पहले वे अपने विष से शिकार को काबू में करती हैं। वे पहले अपने शिकार में जहरीला विष इंजेक्ट करती हैं। क्योंकि मकड़ियों के दांत नहीं

होते इसलिए वे शिकार के अंदर तरल को चूसती हैं। बड़ी मकड़ियां जिनके जबड़े बड़े और सशक्त होते हैं वे अपने शिकार के टुकड़े करके या फिर पूरा खा जाती हैं। मकडियां बिना भोजन के कुछ हफ्तों से लेकर तीन महीनों तक जिंदा रह सकती हैं। यह काल उनकी प्रजाति, साइज और आयु पर निर्भर करता है। मकड़ियों को अपने भोजन से ही तरल मिल जाता है इसलिए उन्हें पानी की जरूरत नहीं पड़ती है।

बहुत सी मकड़ियां शिकार को पकड़ने के लिए जाल बुनती हैं। वैसे उनके पास अपने शिकार को पकड़ने के और भी तरीके होते हैं। कुछ मकड़ियां अपने शिकार पर एक चिपकने वाला जाल थूंकती हैं। कुछ अपने बिलों या मांदों में रहती हैं जिनमें एक विशेष प्रकार का दरवाजा होता है। भूख लगने पर वो बिल से बाहर आकर किसी शिकार को पकड़ती हैं। मकड़ियों की एक प्रजाति रेशमी धागे से एक चिपकने वाली बूंद को अपने तीन जोड़ी पैरों से लटका कर रखती है। जब कोई कीड़ा वहां से गुजरता है तो मकड़ी इस डोरे से उसे पकड़ती है।

कुछ मकड़ियां फूलों पर बैठती हैं और फूलों का पराग चूसने वाले कीड़ों को अपना निशाना बनाती हैं। कुछ अन्य एक छोटा जाल बुनकर उसे अपने पैरों से पकड़ती हैं और फिर नीचे से गुजरने वाले कीड़ों पर यह जाल फेंककर उन्हें पकड़ती हैं। कुछ मकड़ियां केवल अन्य मकड़ियों को ही खाती हैं इसलिए उन्हें *'पायरेट मकड़ी'* कहा जाता है। कुछ मकड़ियां अन्य मकड़ियों द्वारा बुने जालों में रहती हैं। बहुत छोटे आकार की होने के कारण उनका अतिथि उन्हें खाता नहीं है। वे बचे-खुचे शिकार को खाती हैं और इससे अतिथि का जाल साफ-सुथरा रहता है।

मकड़ियों के पास अपने बचाव और रक्षा के लिए अनेक दांव-पेंच होते हैं। कुछ मकड़ियां चिड़ियों की बीट का भेष धारण कर अपनी सुरक्षा करती हैं। कुछ सूखी डंडी या फिर सड़ी पत्ती का रूप धारण करती हैं। कुछ मकड़ियां देखने में चींटियों जैसी लगती हैं इसलिए चिड़िए, सृरीसर्प और अन्य कीड़े उन्हें त्याग देते हैं। कुछ मकड़ियों अपने परिवेश के अनुरूप अपने रंग और आकार बदलती हैं। कुछ मकड़ियां अपने जाल में टेढ़-मेढ सफेद रंग के धागे बुनती हैं। उड़ने वाले पक्षी इन धागों को देखकर जाल में से नहीं गुजरते हैं और उससे जाल नुकसान से बच जाता है।

नर मकड़ो, मादा से छोटी होती है और अक्सर मादा अपने नर को खा जाती है। इसलिए नर मौत से बचने के लिए कई दांव-पेंच खेलते हं। नर बार-बार जाल खींचता है यह संदेश देने के लिए कि वो कोई शिकार या शत्रु नहीं बल्कि एक यौन-वस्तु है।

कुछ नर अपनी मकड़ी साथी को रेशम में लिपटी रसीली मक्खी भेंट देते हैं! पर संभोग के बाद नर उसे वापस लेकर किसी अन्य मादा को भी भेंट कर देता है। कभी नर, मादा को कीड़े की केंचुली भी भेंट में दे सकता है। कभी-कभो नर, मादा को रेशम में ढीला बांधता है जिससे वो हिल-डुल न सके और फिर उसके साथ संभोग करता है। कुछ नर मकड़ियां हफ्तों मादा के जाल के पास इंतजार करते हैं। और जब मादा अपने शिकार को खाने में व्यस्त होती है तब वे उसके साथ संभोग करते हैं। अक्सर नर, मादा मकड़ी की तुलना में इतना छोटा होता है कि जब वो संभोग कर रहा हाता है तो मादा को उसका पता भी नहीं चलता है। उल्टे मादा, नर को संरक्षण देती है।

अधिकांश मकड़ियां एकान्तवासी होती हैं। हरेक मकड़ी अपना अलग जाल बुनती है। अगर गल्ती से कोई मकड़ी किसी अन्य के जाल में गिर जाए तो फिर बड़ी मकड़ी, छोटी को खा जाती है। पर कुछ सामाजिक वृत्ति की मकड़ियां भी होती हैं जो एक ही जाल में रहती हैं। कभी-कभी सैकड़ों-हजारों व्यस्क

और बच्चे एक-साथ एक जाल में रहते हैं। और किसी भी शिकार के पकड़े जाने पर - चाहें वो एक छोटी मक्खी ही क्यों न हो सारी मकड़ियां मिलकर शिकार का भोजन करती हैं।

मकड़ियां की आबादी बहुत तेज गति से बढ़ती है। संभोग के बाद एक अंडे की थैली तैयार होती है और फलीकृत अंडों को इस थैली में रखा जाता है। इस थैली को मादा अपने डंकों और डैनों से पकड़ती है। 15-20 दिनों में 80-प्रतिशत अंडों में से बच्चे निकल आते हैं (अंडों में से बहुत छोटी मकड़ियां बाहर निकलती हैं। नवजात मकड़ियां देखने में बिल्कुल अपने माता-पिता जैसी ही होती हैं - बस उनका आकार छोटा होता है)। एक सप्ताह या दस दिनों के अंतराल के बाद अंडों के नए बैच को एक नई थैली में रखा जाता ह और उन्हें संचित शुक्राणुओं की मदद से फर्टीलाइज किया जाता है। मादा बिना किसी नर से संभोग किए इस प्रक्रिया को तीन-चार बार दोहरा सकती है। वैसे वो अंडों का एक बैच सेने के बाद सहर्ष किसी भी नर से संभोग करने को तैयार होती है।

मकड़ियां कीटों पर जैविक रूप से नियंत्रण रखने में बहुत अच्छी सिद्ध हुई हैं। बहुत कम लोग ही यह जानते हैं कि मनुष्य के पृथ्वी से लुप्त होने के बाद भी मकड़ियां कीड़ों-मकौड़ों को पकड़ने के लिए अपने जाल बुनती रहेंगी।

मकड़ियों का कैसे पालन-पोषण करें

मकड़ियां नरभक्षक होती हैं - यानि अगर दो या तीन मकड़ियों को एक ही डिब्बे में रखा जाए तो वे एक-दूसरे को खा सकती हैं। इसलिए जन्म के बाद से ही उन्हें अलग-अलग डिब्बों में रखना चाहिए।

मकड़ियों को उगाने के लिए प्लास्टिक के पारदर्शी डिब्बों का उपयोग करें। इसके लिए डिब्बे के ढक्कन में अंदर हवा जाने के लिए पिन से कुछ छेद बनाएं। भोजन डालने के लिए एक अन्य बड़ा छेद बनाएं। इस छेद को रुई से बंद करके रखें।

मकड़ियों के पिल्लों को *ट्राईपोलियम, ड्रोसोफिला, फ्रूट-फ्लाई* और घर की मक्खी के कीड़े आदि भोजन के लिए दिए जा सकते हैं। बड़े होने पर वे मक्खियां और तिलचट्टे भी खाने लगेंगे।

शिकार और केंचुली के अवशेषों को नियमित रूप से साफ करना भी बेहद जरूरी है। इसके लिए दो डिब्बों का उपयोग करें। हरेक सप्ताह उपयोग में लाए जाने डिब्बे को साबुन और पानी से धोएं और फिर उसे सूर्य की धूप में सुखाएं।

जिस मेज पर मकड़ियों के डिब्बे रखे हों उसके पैरों को पानी या तेल की कटोरियों में रखें जिससे कि चींटियां मेज पर न चढ़ सकें। व्यस्क मकड़ियों को संभोग से पहले पेट भर कर भोजन खिलाएं। मकड़ियों के लिए कमरे का सामान्य तापमान उपयुक्त होता है।

भोजन तैयार करना

1 दूध के पाउडर और मध्यम आकार के रुई के टुकड़े को पानी में मिलाएं। हर रोज उसमें एक चम्मच दूध का पाउडर डालें।

2 *ड्रोसोफिला लार्वा का कल्चर:* चौथाई कप गेहूं का आटा और दो मध्यम आकार के गुड़ के टुकड़ों को दो कप पानी में उबालें।

मक्खियों और *ड्रोसोफिला* को जाली से जड़े लकड़ी या धातु के पिंजड़ों में पाला-पोसा जा सकता है। ऊपर के घोल को कटोरों में भर कर इन पिंजड़ों में रखें। फिर मक्खियों और *ड्रोसोफिला* को पिंजड़ों में छोड़ें जिससे कि वे अपने अंडे दे सकें।

3 *थ्राईपोडियम लार्वा:* इन कीड़ों को रवे और आटे में पाया जाता है। इसके लिए हवा के छेद वाली विशेष बाल्टी में रोजाना आटे और मैदा के साथ-साथ कुछ पानी छिड़कें। फिर आप जब चाहें तब चलनी से लार्वा को छानकर अलग कर सकते हैं।

4 तिलचट्टे: बहुत से छेदां वाली बाल्टी लें। बाल्टी के मुंह पर जाली चढ़ी हो। बाल्टी के बीच में कागज के कुछ बेलनाकार रोल्स रखें जिससे कि तिलचट्टे उन पर चढ़ सकें।

अध्याय - १०

मगरमच्छ केंद्र

एक साल की कॉलेज से छुट्टी के दौरान मेरे लिए सबसे महत्वपूर्ण महीना दिसम्बर का था। मामल्लापुरम स्थित मगरमच्छ केंद्र में जाने की सभी औपचारिकताएं अब पूरी हो गई थीं। तीन महीने पहले मेरे पिताजी ने श्री रोमोलस विटेकर - जो मगरमच्छ केंद्र के संचालक थे को लिखा था कि क्या मैं वहां कुछ समय गुजार सकता हूं। काफी समय तक कोई उत्तर नहीं मिला क्योंकि रौम (रोमोलस विटेकर) बहुत घूमते-फिरते हैं। फिर शायद इस प्राणी-प्रेमी को पत्रों के जवाब देने से इतना प्रेम भी न हो।

मैं मगरमच्छ केंद्र में काम न कर पाने की वजह से कुछ उदास हो चला था तभी श्रीलता स्वामीनाथन (जिनके साथ हम जयपुर में ठहरे थे) ने कहा कि उनकी बहन मामल्लापुरम में ही रहती हैं और वो जरूर कुछ मदद करेंगी। कुछ टेलीफोन कॉल्स के बाद मेरे वहां जाने का प्रोग्राम पक्का हो गया। जब पिताजी का अंकल मानू को फोन आया कि अब मैं मगरमच्छ केंद्र जा सकता हूं तो मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहा।

अंकल मानू के भतीजे बाबू ने 9 दिसम्बर को मुझे मगरमच्छ केंद्र जाने वाली बस में बैठाया। मैंने मगरमच्छ केंद्र में पूरा एक महीना बिताया जो शायद प्रकृति के बीचोंबीच जंगलों में रहने जैसा था। वैसे क्रिस्मस के समय मुझे घर वापस जाना था परन्तु मैंने अपने माता-पिता से न आने का जबरदस्त आग्रह किया और उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार की। इससे मैं बेहद खुश हुआ। मुझे मगरमच्छ केंद्र में काम करने में इतना मजा आया कि मैं वहां मार्च में दुबारा वापस गया। यह काल बहुत रोचक था क्योंकि वो मगरमच्छों के प्रजनन और अंडे देने का समय था।

मगरमच्छ केंद्र, मामल्लापुरम में स्थित है जो चेन्नई से 37-किलोमीटर दूर है। केंद्र बहुत बड़े क्षेत्र में बसा है और उसके ठीक पीछे समुद्र का किनारा है।

मगरमच्छ केंद्र हजारों मगरमच्छों का घर है जहां उन्हें अलग-अलग गड्ढों में रखा गया है। गड्ढों की दीवारों पर ढलान होता है जिसस कि पानी बीचोंबीच इकट्ठा हो और मगरमच्छ ढलान के ऊपर सूर्य की गर्मी से खुद को सेंक सकें। कुछ बड़े मगरमच्छों को अलग-अलग गड्ढों में रखा जाता है। अलग-अलग प्रजातियों को अलग रखा जाता है। साथ-साथ नर और मादा को भी अलग रखा जाता है। किसी बहुत बड़े बाड़े का छोटे-छोटे खंडों में बांटकर उसमें मगरमच्छ के बच्चों को रखा जाता है।

मगरमच्छों के साथ-साथ इस केंद्र में सांपों का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि वहां के निदेशक रोमोलस विटेकर को सांपों से अत्यधिक प्रेम है। उन्हें आज भी लोग '*स्नेकमैन*' के नाम से पुकारते हैं क्योंकि उन्होंने बहुत साल पहले *मद्रास स्नेक पार्क* स्थापित किया था। दरअसल मगरमच्छ केंद्र में सांपों के लिए एक बहुत बड़ा गड्ढा है और उसमें अनेक प्रजातियों के सांप रखे जाते हैं। यहां पर इरूला जनजाति के लोग सांपों का विष निकालते हैं। अगर दर्शक सांपों वाले भाग में जाना चाहते हैं तो उसके लिए उन्हें अलग से फीस देनी पड़ती है। जहरीले सांपों को एक कमरे में अलग-अलग मटकों में रखा जाता है और नागों (*किंग कोबरा*) के लिए अलग विशेष कमरे हैं।

मगरमच्छ केंद्र में विभिन्न प्रजातियों के कछुओं को रखने की व्यवस्था है और मछलियों के लिए एक विशाल मछलीघर (*एक्वेरियम*) है।

केंद्र के कोने में एक पुस्तकालय भी है जहां पर इन सभी जीवों से सम्बंधित पुस्तकों और पत्रिकाओं का भंडार है। उसके पास में ही शोधकर्ताओं और मेहमानों के रहने के स्थान हैं। (जब मैं वहां गया तब सभी मेहमान विदेशी थे)। मेहमान वहां समय-समय पर रहने के लिए आते हैं। रहने की व्यवस्था सरल परन्तु आरामदेय है। हरेक कमरे में एक पलंग, मेज-कुर्सी और साथ लगा हुआ शौचालय और गुसलखाना है। मैं ऐसे ही एक कमरे में रहा।

इरूला जनजाति के परिवार सांपों के गड्ढे के समीप ही एक अलग ठिकाने पर रहते हैं। अन्य स्थाई कर्मचारियों, निदेशक, संयुक्त निदेशक आदि के मगरमच्छ केंद्र में ही अलग-अलग जगहों पर घर बने हैं।

मगरमच्छ केंद्र में अपने प्रवास के दौरान मेरी कई लोगों से अच्छी दोस्ती हुई। इनमें छह फीट ऊंचे निदेशक रोमोलस विटेकर - जिन्हें हर कोई 'रौम' के नाम से सम्बोधित करता है, उनकी पत्नी जाई विटेकर, उनके बेटे समीर और निखिल, संयुक्त निदेशक हैरी एंड्रूज जो केरल राज्य के हैं, उनकी पत्नी रोमेन और उनके बेटे थरक, जेरी बैंगलोर का रहने वाला है और सांप पकड़ता है। इनके साथ-साथ कई अन्य लोगों से भी मेरी मित्रता हुई।

मगरमच्छ केंद्र में मेरा प्रवास बहुत मजेदार रहा और वहां मैंने बहुत कुछ सीखा। मझे जल्द ही पहला काम सौंपा गया - एक 2-फीट लम्बे कछुए की रोगी त्वचा का इलाज। मैं उसके पैरों पर मलहम लगाकर पट्टी करता था। अगले दिन इलाज को दोहराने से पहले मुझे उस कछुए को पानी में मिली पत्तागोभी खिलानी होती थी।

कछुओं के बाद मैंने बड़ी छिपकलियों यानि *मानीटर लिजर्डस* (गोह) और *ग्रीन इगुआना* के साथ भी काम किया। मैंने जिस *ग्रीन इगुआना* को संभाला वो एक लम्बे कुत्ते जितनी बड़ी थी। उसकी पूंछ उसके शरीर से कम-से-कम दो-तीन गुना लम्बी थी। सिर से पूंछ के सिरे तक उसकी लम्बाई कोई ढाई-मीटर लम्बी जरूर होगी। पर कटघरे में इतने लम्बे अर्से से रहन के कारण उसका व्यवहार बहुत मित्रतापूर्ण हो गया था। वैसे उसके पंजे काफी नुकीले थे और उसकी पीठ और सिर पर कांटे थे। मैं जब कभी विशेष मेहमानों को सैर कराने लाता तो मैं *ग्रीन इगुआना* को उसके पिंजड़े से बाहर निकालता जिससे कि मेहमान उसकी रेगमाल जैसी खुरदुरी त्वचा को छूकर देख सकें। जब संयुक्त निदेशक हैरी ने मुझ बताया कि ग्रीन इगुआना की आयु मेरी उम्र जितनी ही थी तो मुझे बहुत आश्चर्य हुआ।
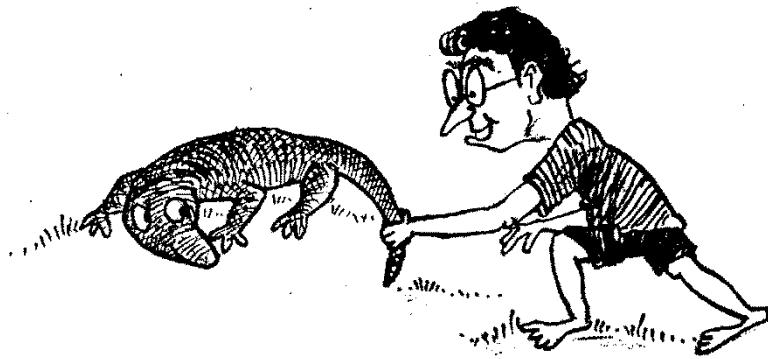
कभी-कभी मैं *मानीटर लिजर्डस* (गोह) को भी सम्भालता था। व बहुत ताकतवर थीं और उनके पंजे बेहद नुकीले और उनके काटने से बहुत दर्द होता था। हर बार जब मैं उन्हें पकड़ने के लिए गड्ढे में उतरता था तो वे तुरन्त दौड़कर पानी में चली जाती थीं। धीरे-धीरे मैं इस काम में दक्ष हो गया। मैं उनके पानी में पहुंचने से पहले ही उन्हें पकड़ लेता था। पकड़े जाने के बाद वे अपनी पूंछ को फटकारती थीं और अपने गले को फुलाकर खतरनाक फुंकारें मारती थीं। इस बीच कुछ गोह ऊपर-नीचे दौड़ती रहती थीं पर उनके बारे में कुछ भी करना असम्भव था। मुश्किल लगने के बावजूद गोह को पानी में पकड़ना ज्यादा आसान था। यह मुझे जल्दी ही समझ में आ गया।

मगरमच्छ केंद्र गड्ढों से भरा था। सारे गड्ढे बाड़ से घिरे थे और उनका माप सृरीसर्प के आकार और उनकी संख्या पर निर्भर करता था। हरेक गड्ढे में सृरीसर्प के नहाने और पीने के लिए पानी होता है। अधिकांश मगरमच्छों के घेरे बिल्कुल वीरान और खाली होते हैं जबकि *मॉनीटर लिर्जडस* के घेरों में खूब पड़ होते हैं जिसस कि वे ऊंची-से-ऊंची टहनियों पर चढ़ सकें। टहनियों का फैलाव घेरे के अंदर ही रखा गया था जिससे कि *मॉनीटर लिजडंस* पेड़ों पर चढ़कर घेरे से बाहर कूद न जाएं।

मॉनीटर लिजर्डस के ताल में कमर तक पानी था। इस गंदे पानी को आप महसूस करके ही *मॉनीटर लिजर्डस* क सिर, पैर या शरीर को छू सकते थे (पानी में उनके द्वारा काटे जाने की सम्भावना कम होती है)। मैं उनकी पूंछ को खोजता और फिर उन्हें एक हाथ से पूंछ के बल उठाता, और दूसरे हाथ से पानी के अंदर उनकी गर्दन पकड़ता था। उनकी गर्दनें इतनी मोटी होती थीं कि मेरी उंगलियां उन्हें बड़ी मुश्किल से ही पकड़ पाती थीं। जमीन पर उनकी पूंछ को कहीं जल्दी पकड़ा जा सकता है पर उनकी गर्दन को बहुत जल्दी पकड़ना पड़ता है नही तो वो आपको काट सकती हैं।

एक बार मगरमच्छ केंद्र के स्टाफ ने पेड़ों से *मॉनीटर लिजर्डस* को उतारने के लिए लम्बे बांस के जरिए लगभग दो मंजिली इमारत जितनी ऊंचाई से नीचे गिरा दिया। जमीन पर इतनी ऊंचाई से गिरने के बाद भी *मॉनीटर लिजर्डस* को कोई चोट नहीं पहुंची और उन्होंने अपना दौड़ना जारी रखा। मुझे वो दिन याद है जब जैरी ने निखिल (जो बांडीबिल्डर है) को मांद में आधी अंदर घुसी *मॉनीटर लिजर्ड* को बाहर निकालने की चुनौती दी। पहले उसे लगा कि *मॉनीटर लिजर्ड* की पूंछ टूट जाएगी। परन्तु पूरा दम लगाकर खींचने के बाद भी वो उसे एक इंच भी बाहर नहीं खींच पाया।

सुबह के समय मैं मगरमच्छों के गड्ढों की सफाई में स्टाफ की मदद करता था। इस काम में मुझे बड़ा मजा आता था। हम लोग डंडे लेकर घेरे में कूदते थे आर मगरमच्छों को पानी में भगाते थे। फिर हम मगरमच्छों का मल और बचा-खुचा खाना जिसमें बहुत सारी हड्डियां होती थीं को साफ करते थे। यह

कवायद एक आदमी द्वारा डंडा लेकर मगरमच्छों को भगाने से शुरू होती थी। उसके बाद 3-4 महिलाएं झाड़ूओं, डलियों और कुदाल से सफाई करती थीं। कभी-कभी कोई मगरमच्छ हमें अपने गड्ढे से भगाना चाहता था। मगरमच्छ की नाक पर जोर से डंडे मारने पर फिर भी वो हमें भगाता था। पर अंत में थककर वो पानी में कूदता था और वहां अपने हजारों मित्रों से जाकर मिलता था! (उस समय मगरमच्छ केंद्र में लगभग 7000 मगरमच्छ थे)।

मुझे कई बार मगरमच्छों को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाने के अभियान में भी भाग लेने का मौका मिला। वो अपने आप में काफी साहसिक काम था।

एक दिन रौम और हैरी ने सबसे बड़े नर मगरमच्छ को दूसरे स्थान पर ले जाने की योजना बनाई। पिछले प्रजनन के मौसम में इस मगरमच्छ का एक अन्य नर के साथ लड़ते हुए ऊपरी जबड़ा टूट गया था।

पकड़ते वक्त आप मगरमच्छ की नाक में नकेल डालने की कोशिश करते हैं। और जब नकेल अच्छी तरह से फंस जाती है तब मगरमच्छ को खींचते हं। पानी से बाहर निकलते ही 10-15 लोग कूद कर झट से मगरमच्छ के ऊपर बैठ जाते हैं। (इस तरीके से मगरमच्छ दुबारा पानी में नहीं घुस सकता है)। फिर मगरमच्छ के मुंह को रबर-बैन्ड से बांध दिया जाता है और फिर उसे एक लकड़ी की सीढ़ी पर रखा जाता है। फिर सीढ़ी को उठाकर मगरमच्छ को दूसरी जगह ले जाया जाता है। सामान्यत: व्यस्क मगरमच्छ 2-3 मीटर लम्बा होता है और उसका भार 250-किलो होता है। उसे इधर-उधर ले जाने में 10-15 लोग लगते हैं।

पानी में छोड़े जाने के बाद मगरमच्छ के शरीर के रबर-बैंड और रस्सियों को खोल दिया जाता है। फिर आखरी रस्सी खोलने वाला व्यक्ति तालाब में से तेजी से अपनी जान बचाकर सुरक्षा के लिए जमीन की ओर दौड़ता है।

क्योंकि हम नर घड़ियाल को मादा के गड्ढे में छोड़ रहे थे इसलिए हैरी ने मजाक में कहा, 'बोलो अब हमें क्या मिलेगा - घैमर!' वैसे मगरमच्छ अपनी ही प्रजाति के अन्य मगरमच्छों के साथ संभोग करते हैं और घड़ियाल की मगरमच्छ के साथ संभोग की कोई सम्भावना नहीं थी। दरअसल इस मगरमच्छ को घड़ियालों के गड्ढे में इसलिए डाला गया था कि वो अन्य नरों से लड़े बिना यहां आराम से रहे और उसका जबड़ा ठीक हो सके।

जब मगरमच्छ जौज़-3 को मादा के साहचर्य की जरूरत पड़ी तो उसे दूसरे गड्ढे में ले जाया गया। जौज़-3 भारत में नमकीन पानी में पाया जाने वाला देश का सबसे विशाल मगरमच्छ था। उसकी लम्बाई 16-फीट की थी और इस लिहाज से दुनिया में उसकी लम्बाई तीसरे या चौथे नम्बर पर होगी। इसलिए फिल्म *'द ग्रेट व्याइट मैन ईटिंग शार्क'* के दूसरे भाग जौज़-2 के निर्माण के बाद मगरमच्छ केंद्र के लोगों ने इस मगरमच्छ का नाम जौज़-3 रखा।

जौज़-3 कुंवारा था। अगर कोई भी अन्य मगरमच्छ उसके गड्ढ में आता तो वो उसे मार देता। इसलिए वो बिल्कुल एकांत में राजसी जिंदगी जीता था। जब कभी हम उसके घेरे को साफ करने जाते तो वो पानी में से निकलकर हम पर हमला करने आता। हम सब मिलकर भी उसे इतना नहीं दौड़ा पाते थे जितना कि वो हमें अकेले दौड़ाता था। दस साल बाद मगरमच्छ केंद्र के लोगों ने उसके लिए दुल्हन तलाश करने की सोची। उसने पास में गड्ढे में मादा की गंध सूंघकर कई बार अपना सिर पटका था। इससे लगा था कि अब वो तैयार है!

उसके लिए उपयुक्त मादा खोज कर उसके गड्ढे में डालने से पहले मुझे मादा का निरीक्षण करने को कहा गया। (मैंने तभी मगरमच्छों का लिंग पहचानना सीखा था)। मैंने मगरमच्छ को छूकर देखा और मुझे उसमें नर-लिंग महसूस हुआ। 'यह तो नर है मैं चिल्लाया'। 'यह असम्भव है', जैरी ने कहा, 'मैं भी निरीक्षण करके देखता हूं।' कुछ मिनट के बाद जैरी ने आश्वस्त किया और कहा, 'रौम, यह तो वाकई में नर है!'

'राहुल, लिंग पता करने में उस्ताद निकला,' जैरी चिल्लाया।

मगरमच्छ नर है या मादा इसे सिर्फ बाहर से देखकर नहीं बताया जा सकता है। इसलिए केंद्र में मगरच्छों के एक निश्चित लम्बाई के होने पर उनके लिंग को उनकी पीठ पर चिन्हित किया जाता है। पर कर्मचारी कभी-कभी छोटे मगरमच्छों के लिंग को पहचानने में गल्ती कर देते हैं। यही गल्ती शायद जौज़-3 की पहली दुल्हन चुनने में हमसे हुई। अगर उस दुल्हन को जौज के गड्ढे में डाल दिया जाता तो उसकी शामत ही आ जाती! जौज़-3 उसके मिनटों में टुकड़े-टुकड़े कर डालता।

इस घटना के बाद हम हरेक सम्भावित मादा को लिंग के लिए दो बार जांचते थे यह सुनिश्चित करने के लिए कि हमसे कोई गल्ती न हो। परीक्षण के दौरान कई मादाएं वाकई में नर निकलीं! तब तक अधिकांश मगरमच्छ गहरे पानी में गोता लगा चुके थे और अब हमारे पास मादा चुनने के लिए मगरमच्छ ही नहीं बचे थे। रौम ने नर मगरमच्छों को खदेड़ कर जमीन पर लाने का सुझाव दिया। पर यह कोई आसान काम नहीं था। इसलिए फिर उसने एक नई योजना बनाई।

हम कुछ लोहे के दरवाजे लाए और उनके ऊपर हमने जाली चढ़ाई। फिर हम इस जाली को अपने सामने रखकर गहरे पानी में उतरे। इस प्रकार हम गहरे पानी से मगरमच्छों को खदेड़ कर जमीन पर ला पाए। पर कभी-कभी अच्छी योजनाएं भी फेल हो जाती हैं। एक ओर मगरमच्छ पानी से जमीन पर आ रहे थे, दूसरी ओर जमीन के मगरमच्छ पानी में जाने लगे। इससे एक कोलाहल मच गया और मगरमच्छ इधर-उधर नाचने लगे। एक मगरमच्छ तो मेरे पड़ोसी का हाथ काटने वाले था। मैं मगरमच्छों को जाली में से बिल्कुल अपने पैरों के पास महसूस कर सकता था। मैं लोहे के गेट को कसकर पकड़े रहा। खैर, अंत में हम इस खतरनाक मिशन को सफलतापूर्वक अंजाम दे पाए। कई सारी मादाएं जमीन पर आयीं और उनमें से हम एक को जौज़-3 के लिए चुन पाए।

जब जौज़-3 को इतने साल बाद एक मादा मिली तो उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। मादा उसकी लम्बाई और चौड़ाई की बिल्कुल आधी थी। मादा को देखकर वो बहुत उत्तेजित हुआ। शायद वो नर की सामान्य आक्रामकता थी परन्तु जौज़-3 ने मादा को अपने जबड़े में पकड़कर उसकी खूब पिटाई की। 'मगरमच्छ का गोश्त बहुत स्वादिष्ट होता है,' थरक ने मादा की खराब हालत देखकर कहा। किसी भी क्षण वो मर सकती थी। भाग्यवश उसकी भविष्यवाणी सच नहीं निकली। मादा बच गई पर उसे काफी चोट आई। फिर वो पानी में जौज़-3 से अपनी सुरक्षा के लिए दूर रहने लगी।

काफी अर्से बाद जब मैं दूसरी बार मगरमच्छ केंद्र गया तो वो मगरमच्छों के प्रजनन का समय था और वहां रोजाना कुछ घोंसलों को खोदा जा रहा था। हरेक घोंसला एक मध्यम आकार की टोकरी के माप का था। हरेक अंडा मुर्गी के अंडे से तीन-गुना बड़ा था और हरेक घोसले में 30-35 अंडे थे। हरेक मादा जिनकी लम्बाई ढाई से तीन मीटर थी अपने घोंसलों की दृढ़ता से पहरेदारी करती थी। घेरे को साफ करने के लिए हम उन्हें वहां से ढकेलने की कोशिश करते पर वो घोंसलों से टस-से-मस नहीं होती थीं।

मगरमच्छ केंद्र में अब मगरमच्छों के बहुतायत की समस्या है। उनकी आबादी बहुत बढ़ गई है। केंद्र में वे जंगली परिवेश की तुलना में दोगुनी गति से प्रजनन करते हैं और केंद्र में उनके जीवित रहने की सम्भावना बहुत अधिक बढ़ जाती है। जंगली परिवेश में 30-35 अंडों में से अधिक-से-अधिक एक या दो ही जिंदा रह पाते हैं और बाकी हिंसक जीवों के शिकार हो जाते हैं। पर केंद्र में कृत्रिम वीर्यरोपण, विशेष घेरों आदि क कारण कहीं ज्यादा अंडे जिंदा बचते हैं। इसलिए अब मगरमच्छ केंद्र ने इस प्रजाति के मगरमच्छों के प्रजनन को बंद कर दिया है। इसलिए हमें नाश्ते में ढेरों अंडे खाने को मिलते थे! हम इन नमकीन अंडों को सॉस के साथ झटपट खाते थे। मगरमच्छों के बहुत से अंडों को *मॉनीटर लिजर्डस* के नाश्ते के लिए भेज दिया जाता था।

कभी-कभी मैं इरूला जनजाति के लोगों के साथ शिकार पर निकल जाता था। इरूला आदिवासी होते हैं और सांप पकड़ने में उस्ताद होते हैं। पूर्व में वे चमड़ा उद्योग के लिए सांप पकड़ने का काम करते थे। पर सांप के चमड़े पर पाबंदी लगने के बाद उनका धंधा बंद हो गया और उनकी रोजी-रोटी के लाले पड़ गए। वे भूमिहीन थे और उन्हें खेती तथा अन्य कोई धंधा नहीं आता था। मगरमच्छ केंद्र के खुलने के बाद जिस धंधे में वे माहिर वे वो फिर से चमक उठा। पर इस बार उनके काम से - सांपों का विष निकालने से, लोगों और सांपों दोनों को बहुत लाभ हुआ।

हाथ में एक लोहे का डंडा और कुछ कपड़े के थैले लेकर वो अपने मुहिम पर निकलते। वे झाड़ियों को तलाशते और जिस बिल में सांप होने की सम्भावना होती उसे खोदते। लोहे क डंडे से वे तीन काम करते थे। 1) उससे बिल में रोशनी चमकाते, 2) उससे बिल खोदने, 3) उससे सांप को सम्भालते। इन काले रंग के, घुंघराले बालों वाले आदिवासी शिकारियों के साथ मिलकर मैंने *स्ट्राइप्ड कीलबैक,* धामन (*रैटस्नेक*) और काले बिच्छू पकड।

सांपों के साथ-साथ इरूला, चूहे भी पकड़ते थे। फसल को नुकसान पहुंचाने वाले चूहे अपने बिल खेतों की मेढ़ों में बनाते थे। चूहों के बिलों को खोदने के बाद इरूला उनके बिलों में संचित चावल को इकट्ठा करते। फिर वो उस चावल को पकाकर चूहों के मांस के साथ खाते। गर्मी में इरूलाज के साथ शिकार पर जाना बहुत कठिन था परन्तु मुझे उसमें बहुत मजा आया।

इरूलाज ने मुझे सांप को पकड़ने और सम्भालने के बारे में बहुत कुछ सिखाया। उनसे मैंने चारों विषैलों सांपों - '*द बिग फोर*' यानि नाग (*कोबरा*), *कॉमन क्रेट, रसिल्स वाइपर्स, सॉ-स्केल्ड वाइपर्स* के साथ-साथ *पिट-वाइपर्स* और अजगरों को भी पकड़ना और सम्भालना सीखा।

सांपों में मटकों में संजोकर एक कमरे में रखा जाता था। (यह कमरा सामान्य बेडरूम जैसा था)। कमरे के बाहर एक तख्ती लगी थी: 'सावधान: अंदर खुले सांप हैं!' पर वास्तव में सांपों को केवल विशेषज्ञों की निगरानी में ही खोला जाता था। कमरे के चारों ओर एक नाली थी जिसमें लगातार पानी बहता रहता था। इससे कमरे में चींटियां अंदर नहीं आ सकती थीं। (आप यकीन नहीं करेंगे परन्तु चींटियां बहुत जल्दी ही जिंदा सांप का कंकाल बना सकती हैं!)। कमरे में घुसने के बाद कुछ स्थान था और फिर एक-दो मीटर की दूरी पर लगभग एक-मीटर ऊंची चिकनी दीवार थी। मैं सांपों को उनके मटकों में से बाहर निकाल कर नाली में उन्हें पानी पिलाता था और फिर उनके मटकों को साफ करता था। इस कवायद के दौरान मुझे सांपों को पकड़ने और उन्हें संभालने की अपनी कुशलता को बेहतर करने का अवसर मिलता था। बुनियादी तौर पर

सांप को उसकी पूंछ से पकड़ना होता है और फिर लकड़ी की डंडी के सिरे पर हुक से सांप को नियंत्रित करना होता है।

क्या सांप ने तुम्हें काटा? मगरमच्छ केंद्र मेरे अनुभव के बारे में यह प्रश्न लोग जरूर पूछते हैं। क्या सांप ने तुम्हें काटा? हां, कई बार, अक्सर इत्तिफाक से। पर कई बार मैंने सांपों को मुझे काटने का खुद सुअवसर दिया - केवल अनुभव के लिए। मुझे याद है - एक बार *रैटस्नेक* (धामन) ने सीधे मुझे नाक पर काटा। मैंने इसे रौम से छिपाना चाहा परन्तु मेरी कमीज पर लगे खून के धब्बों से वह समझ गए। *रैटस्नेक* के काटे का जख्म इतना दर्द नहीं करता पर जख्म में से खून बिल्कुल खुले नल जैसे बहता है। 'फिक्र मत करो, राहुल,' रौम ने प्रसन्न होकर कहा, 'जहर अगले आधे घंट तक कोई असर नहीं करेगा।' *(रैटस्नेक* जहरीले नहीं होते हैं)।

एक बार मैं एक मगरमच्छ के साथ अपनी फोटो खिंचवा रहा था तभी मगरमच्छ ने पलटकर मुझे काट लिया। वो जख्म बहुत दर्द भरा था! कल्पना करें एक आरा मशीन आपके हाथ को काट रही हो। परन्तु मैंने हिम्मत नहीं हारी। मैं खुश था क्योंकि मगरमच्छ ने मुझे काटा था।

फिर मेरी बेवकूफी के कारण दीवार की छिपकली ने मुझे काटा। जैरी ने इस छिपकली को *पिट-वाइपर्स* को खिलाने के लिए पकड़ा था। उसके जख्म का निशान आज भी मेरे हाथ पर है और वो मुझे पुणे में *चेकर्ड कीलबैक* के काटने की याद दिलाता है। पुणे के हादसे के बाद मैं कई दिनों तक अपनी कलाई में घड़ी नहीं पहन पाया था।

आज मगरमच्छ केंद्र में मेरा आखिरी दिन था। मैं उपहार स्वरूप एक लाल-कान वाले कछुए को घर ले जा रहा था। इस कछुए ने मुझे इतने जोर से काटा कि मैं कुछ दिनों के लिए अपना हाथ उपयोग करने में असमर्थ रहा।

अब अतीत में देखने से मुझे लगता है कि मैं सांप के जख्मों को उसी प्रकार एकत्रित कर रहा था जैसे कुछ लोग ट्रौफी और मेडल इकट्ठे करते हैं। वैसे यह एक बेवकूफी का काम था (क्योंकि कुछ जख्म वाकई में तकलीफदह थे)। पर सांपों द्वारा अनेकों बार काटे जाने से एक फायदा हुआ। सांप के काटने का डर मेरे दिल से सदा के लिए रफूचक्कर हो गया। मैं सांपों और अन्य सृरीसर्पों को पकड़ते और सम्भालते समय मुझे सिखाई गई सभी सावधानियां बरतता हूं परन्तु अगर किसी जीव ने मुझे काटा भी तो भी मैं एकदम घबराऊंगा नहीं और काटे का सही उपचार करूंगा।

एक ओर मुझे बहुत कुछ प्रैक्टिकल सीखने को मिल रहा था, पर उसके साथ-साथ केंद्र में एक बहुत सुंदर पुस्तकालय था जहां मैं मगरमच्छों, सांपों, *मॉनीटर लिजर्डज* और कछुओं के बारे में किताबें पढ़ सकता था। मैं दिन में जो कुछ देखता उसके बारे में मैं बड़े चाव से नई जानकारी खोजता था। वैसे मैं किसी परीक्षा को पास करने की तैयारी नहीं कर रहा था परन्तु मैंने जो कुछ भी पढ़ा वो आज भी मुझे अच्छी तरह याद है।

इस दौरान मैंने बहुत मौज-मस्तो की। कभी-कभी मैं हैरी के घर जाकर थरक के साथ संगीत की धुनें बजाता या फिर गाने सुनता था। अन्य अवसरों पर मैं रौम के घर पर फिल्में देखता था। कभी-कभी जंगली चूहों, मेंढकों के पैरों, मछलियों, मुर्गियों और सुअर का पका मांस खाने के बाद चॉकलेट केक खाता था। केंद्र के पीछे स्थित समुद्र तट, दिन में नहाने और रात को केंकड़े पकड़ने के लिए काम आता था।

जब मैं वहां था तब एक बेहद रोचक बात हुई। *नैशनल जियोग्रैफिक* पत्रिका की टीम मगरमच्छ केंद्र में *किंग कोबरा* (नाग) के ऊपर एक फिल्म बनाने आई। मैंने फिल्म बनाने में कई स्तरों पर उनकी मदद की – फ्लैश पकड़ना, शूटिंग में मदद, मेंढ़कों को बार-बार पकड़ना जिससे कि बार-बार शूटिंग के दौरान वे फ्रेम से भाग ने जाएं।

एक दिन दोपहर को थरक ने मुझे अपने बाल कटवाने का सुझाव दिया। तब तक मेरे बाल काफी बढ़ गए था। दरअसल मैंने एक साल से, जब से मैंने छुट्टी ली थी अपने बाल नहीं कटवाए थे। इसलिए वो अब कंधों तक आ रहे थे। थरक ने कहा कि उसे बाल काटने का डेढ़ महीने का अनुभव है। इसलिए 'लेटेस्ट स्टाइल' में मुफ्त में बाल काटने के उसके सुझाव को मैंने स्वीकार किया।

मैंन थरक को अपनी पसंद का स्टाईल समझाने की कोशिश की और वो बार-बार सहमति में अपना सिर हिलाता रहा। फिर उसने इधर-उधर कैंची चलानो शुरू की और कहीं-कहीं पर बालों पर उस्तरा भी चलाया। काम समाप्त करने के बाद उसने मेरे चेहरे के सामने दर्पण रखा। मैं खुद अपने चेहरे को पहचान नहीं पाया। मेरे सिर पर त्रिकोण कट थे और सामने की ओर एक बालों का गुच्छा लटक रहा था। मैं किसी रॉक-स्टार से भी ज्यादा सनकी लग रहा था! तब मुझे असलियत पता चली कि थरक को बाल काटने का कोई अनुभव नहीं था और वो पहली बार मेरे बालों पर प्रयोग कर रहा था।

तब मैंने अपने सिर को पूरी तरह मुंडवाने का निश्चय किया। इसके लिए मैं एक असली नाई के पास गया। बाल मुंडवाने का अनुभव वाकई में मुक्तिदायी था। मैंने अपने घुटे सिर के साथ उन दिनों की यादगार बतौर, तमाम सृरीसर्पो के साथ अनेकों फाटो खिंचवाए।

मगरमच्छ केंद्र को छोड़ते वक्त मुझे बहुत दुख हुआ। मैंने सब लोगों से जल्दी ही वापस लौटने का वादा किया। बतौर यादगार मैं अपने साथ कुछ कछुओं के अंडे और एक *रेड-ईयर्ड* कछुआ लेकर गया। यह कछुआ आज भी मेरे पास है।

मैंने रात भर बैंगलोर जाने वाली बस में सफर किया। मेरे पैरों के पास डिब्बे में कछुआ रखा था। उसके सांस लेने के लिए डिब्बे में एक छेद था। मैंने अचानक देखा कि कछुआ रेंग कर बस के दरवाजे के पास पहुंच गया था! मैंने जल्दी से उठकर कछुए को वापस डिब्बे में रखा। भाग्यवश ज्यादातर मुसाफिर गहरी नींद में थे और उन्होंने मुझे देखा नहीं। सिर्फ एक बूढ़ी महिला ने देखा। वो मुस्कुरायीं और उन्होंने कहा, 'बेटा, क्या तुम्हारी पानी की बोतल गिर गई?'

फील्ड-वर्क नोट्स

वे मानव से करोड़ों वर्ष पहले से धरती पर रह रहे हैं पर आज लुप्त होने की कगार पर हैं। उनके बारे में तमाम किवदंतियां फैली हैं पर बहुत कम तथ्यात्मक जानकारी है। कई को बहुत खतरनाक समझा

जाता है। इनमें से किसी जीव को भी उपयोगी नहीं समझा जाता। यह कौन से प्राणी हैं? उन्हें हम मगरमच्छ, घड़ियाल और छिपकली के नाम से जानते हैं।

दुनिया में मगरमच्छों और घड़ियालों की कुल 21 प्रजातियां पाई जाती हैं।

भारत में उनकी तीन प्रजातियां पाई जाती हैं। उनके नाम हैं:

1) घड़ियाल - यह मछली खाने वाले मगरमच्छ हैं
2) मगर और
3) नमकीन पानी के मगरमच्छ

दुनिया में सबसे बड़े और सबसे खतरनाक मगरमच्छ, नमकीन पानी के मगरमच्छ हं। वो 25-फीट लम्बा हो सकते हैं। वही एकमात्र ऐसे मगरमच्छ हं जो लम्बे समय तक समुद्र में रह सकते ह। अफ्रीका की नील नदी में पाया जाने वाले मगरमच्छ भी बहुत खतरनाक होते हं। भारत में अतीत में रहने वाली तीन अन्य मगरमच्छों की प्रजातियों के जीवाश्म पाए गए हैं।

ये ठंडे खून के प्राणी करोड़ों साल पहले डायनोसौर्स के साथ-साथ विकसित हुए। वे रिश्ते में सांपों और सृरीसर्पों की तुलना में पक्षियों के अधिक करीब हैं। ठंडे खून के प्राणी होने की वजह से वे अपने शरीर के तापमान को कभी धूप, कभी छांव या फिर पानी के विभिन्न स्तरों में रहकर नियंत्रित करते हैं। आराम करते समय उनके जबड़े खुले रहते हैं। इससे शायद उन्हें ठंडे रहने में मदद मिलती है।

उनकी आंखें, नाक और कान बिल्कुल थूथनी, सिर की सीधी रेखा में स्थित होती हैं। उनकी नजर बहुत पैनी, सूंघने और सनने की इंद्रियां तेज होती हैं। उनकी पूंछ बहत ताकतवर होती है और वो उनको तैरने में मदद देती है। उनकी पचाने की गति बहुत धीमी होती है इसलिए हर कुछ दिनों बाद ही शिकार करने की जरूरत होती है। पानी के अंदर वे अपनी चयापचयी (*मेटाबालिक*) गति को और कम करके पानी के अंदर लम्बी अवधि के लिए रह सकते हैं। घड़ियाल पानी के अंदर छह घंटों तक रह सकते हैं। वे बेफालतू में इधर-उधर हाथ-पैर नहीं पटकते हैं पर मौका आने पर वे जमीन पर भी बहुत तेजी से चल सकते हैं। नमकीन पानी के छोटे मगरमच्छ छोटी दूरियों को 48-किलोमीटर प्रति घंटे की गति से तय कर सकते हैं।

मगरमच्छ छोटी और बड़ी नदियों, तालाबों, *मैनग्रोव्ज* तथा ताजे और नमकीन पानी के ताल-तलईयों में पाए जाते हैं। घड़ियाल का बच्चा पैदाइश के समय केवल पौने फुट (25-30 सेमी) लम्बा होता है। कुछ सालों में वो व्यस्क बन जाता है। परिपक्वता आयु की अपेक्षा मगरमच्छ के साइज पर निर्भर करती है। अक्सर मादा की तुलना में नर धीमी गति से परिपक्व होते हैं।

प्राकृतिक स्थितियों में मादा 5-7 सालों में परिपक्व (*मैच्योर*) होगी जबकि नर को 8-10 वर्ष लगेंगे। घड़ियालों को *मैच्योर* होने में ज्यादा समय लगता है - मादा को 8-10 साल और नर को करीब 12 साल। पर मद्रास मगरमच्छ केंद्र की विशेष परिस्थितियों में जहां मगरमच्छों को बंधक रखा जाता है वहां मादा 4 साल में और नर 5 वर्ष में *मैच्योर* हो जाते हैं।

व्यस्कता प्राप्त करने पर मगर की औसतन लम्बाई (2-मोटर) और मादा की (डेढ़-मीटर) होती है। नमकीन पानी के घड़ियाल व्यस्क होने पर साढ़े तीन मीटर लम्बे और मादा 3-मीटर लम्बी होती है।

मगर के प्रजनन का मौसम फरवरी और अप्रैल के बीच होता है। नमकीन पानी के घड़ियालों के प्रजनन का मौसम अप्रैल में और अन्य घड़ियालों के प्रजनन का मौसम मार्च के अंतिम सप्ताह और अप्रैल के दूसरे सप्ताह के बीच होता है।

पर्यावरण की परिस्थितियों पर ही वंशवृद्धि निर्भर करती है। प्रजनन के मौसम में नर एक-साथ कई मादाओं के साथ संभोग करने के लिए बाकी नरों से लड़ते हैं। प्रेमालाप के दौरान मगरमच्छों की जोड़ियां पानी में बुलबुले उड़ाती हैं, नाक रगड़ती हैं, थूथनी उठाकर बार-बार पानी में डुबकी लगाकर फिर सतह पर वापस आती हैं। विभिन्न प्रजातियां अलग-अलग तरीके से प्रेमालाप करती हैं। मिसाल के लिए प्रेमालाप के वक्त घड़ियाल भिनभिनाने की आवाज निकालते हैं। संभोग पानी के नीचे होता है और उसमें नर मादा की पीठ पर चढ़ता है।

गर्भकाल औसतन 35-60 दिनों को होता है। मगर का गर्भकाल 35-40 दिनों का होता है। नमकीन और साधारण घड़ियालों का गर्भकाल 40-60 दिनों का होता है। अंडों के तापमान पर और बाहर की नमी पर अंडे के अंदर बच्चे का लिंग निर्धारित होता है।

मगरमच्छ अंडे सेने के लिए या तो 30-सेमी गहरा गड्ढा करते हैं या फिर पत्तों की ढेरी बनाते हैं। वे अक्सर घोंसले का तापमान कम करने के लिए उसपर पानी छिड़कते हैं। अगर तापमान स्थिर हो तो 28 से 31 डिग्री सेंटीग्रेड पर मगर प्रजाति में केवल मादा बच्चे जन्मते हैं। अगर तापमान 32 .5 डिग्री सेंटीग्रेड हो तो सिर्फ नर बच्चे जन्मते हैं। अगर तापमान 31 .5 से 33 डिग्री सेंटीग्रेड हो तो दोनों नर और मादा बच्चे जन्म लेते हैं।

मादा, घोंसले की पहरेदारी करती है। अंडे सते के दौरान जब बच्चे शोर मचाते हैं तब मां (और कभी-कभी पिता भी) घोंसले के मुंह को खोल देते हैं। फिर मादा अंडों को अपने दांतों से तोड़ देती है जिससे कि उनमें से पिल्ले बाहर निकल आएं। फिर वो पिल्लों को अपने मुंह में रखकर पानी तक ले जाती है। प्रौढ़ मगरमच्छ 5-7 महीनों तक अपने बच्चों की सुरक्षा करते हैं।

प्रकृति के पर्यावरण चक्र में मगरमच्छों का भी अहम रोल है। वे प्रदूषित करने वाले मृत शरीरों को खाकर पर्यावरण को साफ रखते हैं। वे बीमार, जख्मी और कमजोर प्राणियों का शिकार करते हैं जिससे सबसे शक्तिशाली ही जीवित बचते हैं और इससे स्वस्थ्य आबादी निर्मित होती है। इससे शिकार किए जाने वाले प्राणियों की अनुवांशिक गुणवत्ता भी बरकरार रहती है।

सूखे मौसम में मगरमच्छों द्वारा बनाई गई गुफाओं से अन्य प्राणियों को पीने का पानी मिलता है। कई जीव मगरमच्छों पर अपने भोजन के लिए निर्भर करते हैं। उदाहरण के लिए नील नदी के *आईबिस* पक्षी और *मानीटर लिजडर्स* मगरमच्छ के अंडे खाती हैं। मगरमच्छों को बहुत कम बीमारियां होती हैं इसलिए वे चिकित्सा के शोध में भी काम आ सकते हैं।
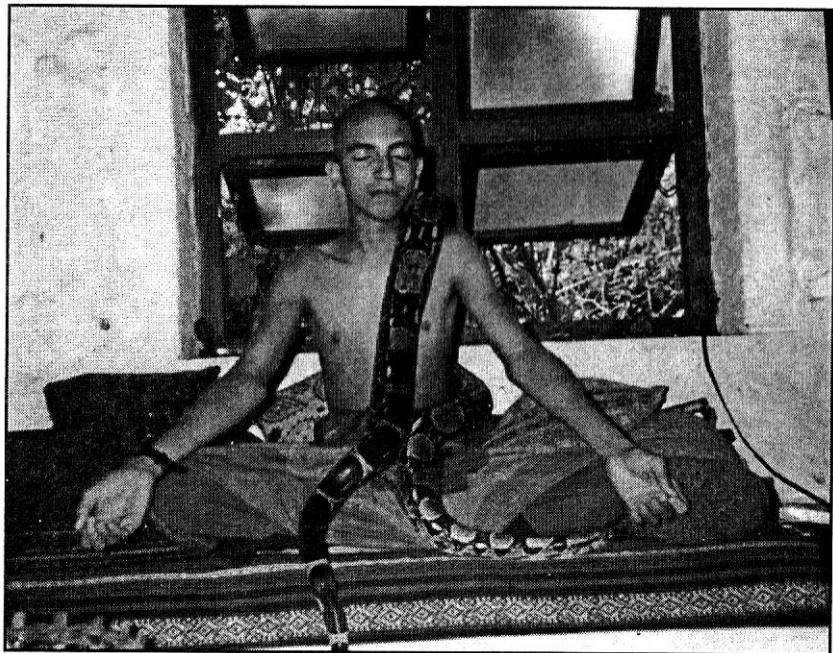
मेरे जीवन की एक दिली तमन्ना पूरी हुई। यहां मैं एक दक्षिण अमरीकी बोआ कंस्ट्रिक्टर को गले में लपेटे ध्यान मग्न हूं।
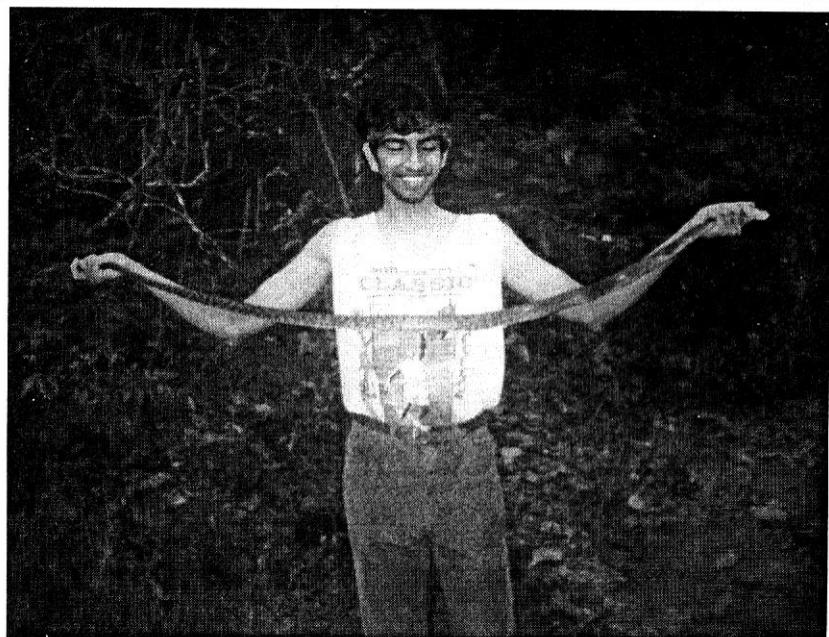
जंगल में छोड़ने से पहले रैट-स्नेक (धामन) दानों हाथों में तना हुआ।
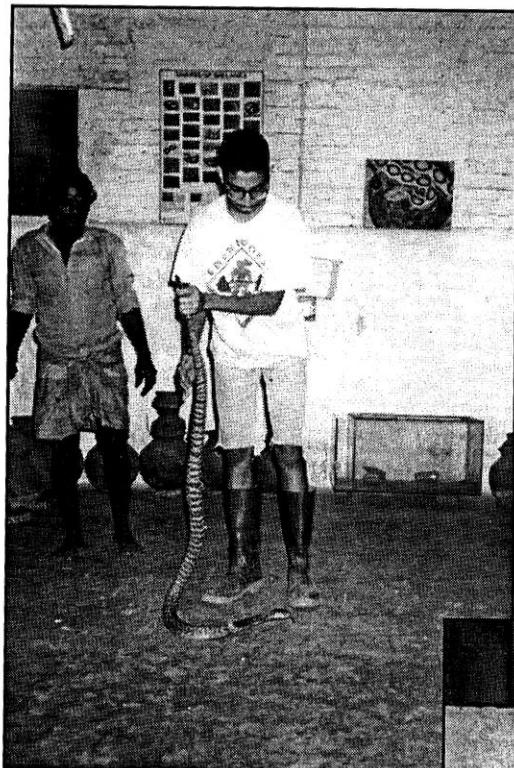
मगरमच्छ केंद्र के एक अनुभवी इरूला स्टाफ से कोबरा (नाग) को सम्भालना सीखते हुए।
एक हाथ स सांप की पूंछ पकड़कर दूसरे हाथ मं हुक वाले डंडे से मैं सांप का फन सम्भाल रहा हूं।
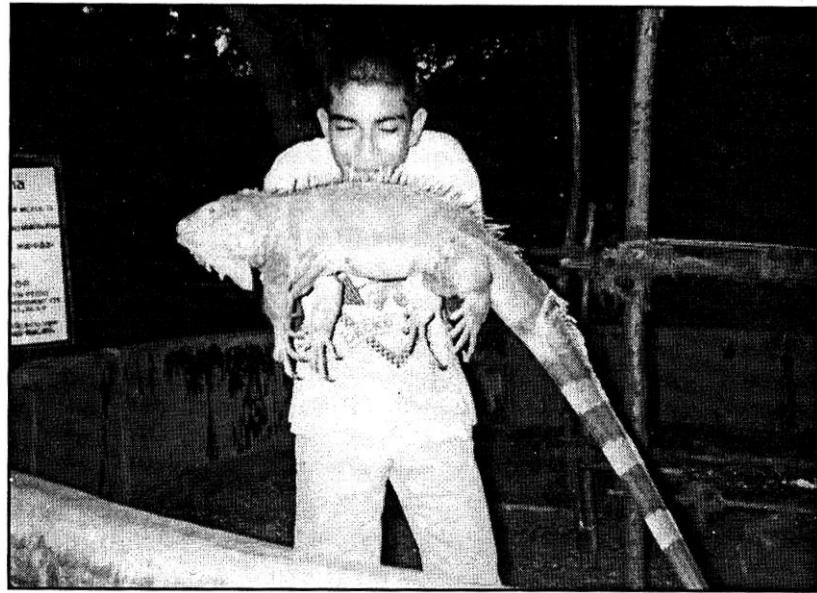
इस इगुआना को उठाकर ले जाना बहुत मुश्किल था।
यहां मैं उसे उसके ही कटघरे में उठाए हूं और इसमें मुझे बहुत मजा आ रहा है।
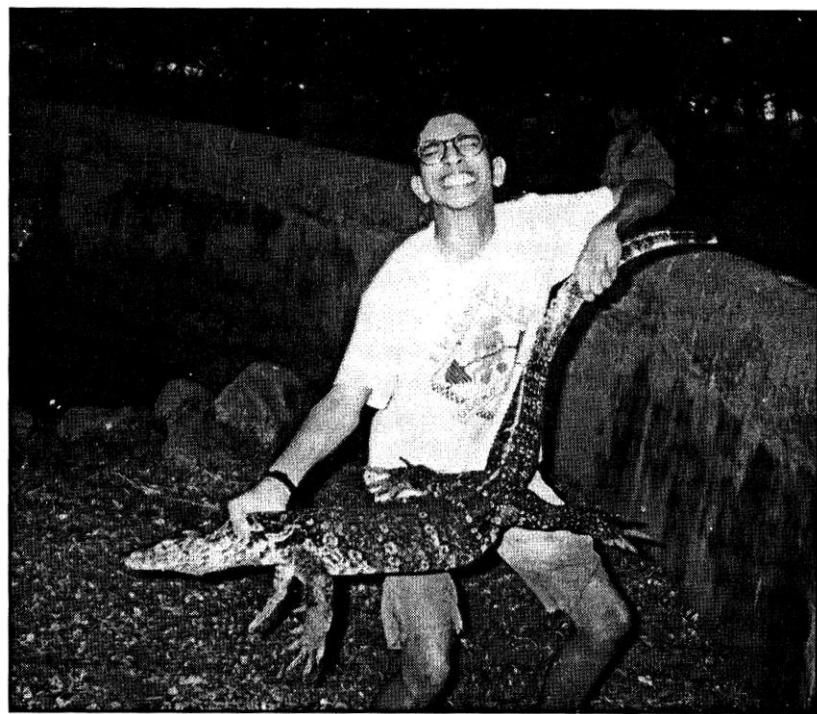
अगर आपने सावधानी नहीं बरती तो मॉनीटर लिजर्डस आपको काट सकती हैं।
पर यहां मैंने उन्हें अच्छी तरह से सम्भालना सीखा।
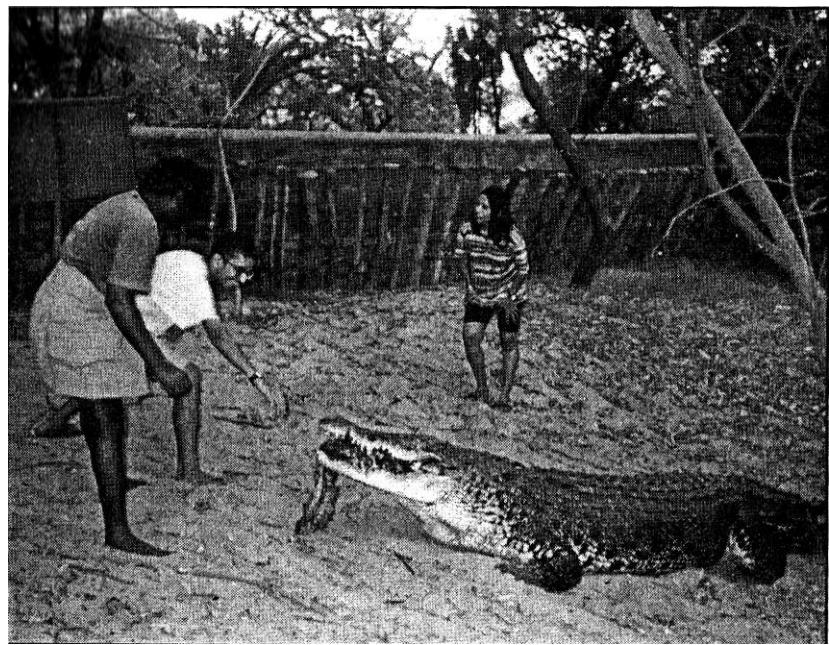
खुद के पैरों को बचाकर ज़ौज़-3 मगरमच्छ को कच्चा मांस खिलाते हुए (नमकीन पानी में पाए जाने वाला वो भारत का सबसे बड़ा मगरमच्छ था)।
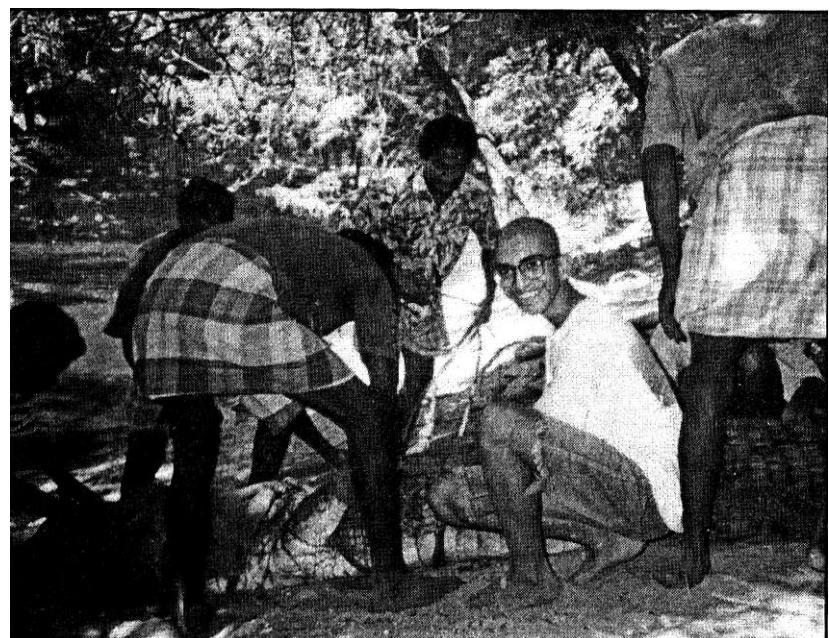
जबड़ा टूटे नर घड़ियाल को मादाओं के गड्ढे में डाला जा रहा है। इस कार्य के लिए 12-14 लोगों की टीम लगती है।
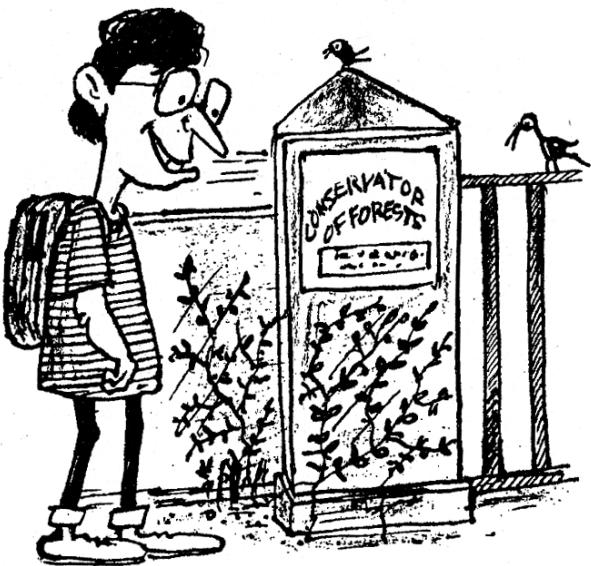
अध्याय - ११
पढ़ना सिखाना

जनवरी में मुझे एक बिल्कुल नया अनुभव मिला और इसका पूरा श्रेय श्री हार्टमैन डिसूजा को जाता है। मैं बैंगलोर होकर गोवा वापस जा रहा था। हमारे करीब मित्र उज्जवला और हार्टमैन बैंगलोर में रहते हैं और उन्होंने मुझे कुछ दिनों के लिए अपने घर में ठहरने की स्वीकृति दी थी। इसलिए मेरे माता-पिता ने गोवा लौटने से पहले मुझसे कुछ दिन बैंगलोर में बिताने को कहा। मैं अब कुछ दिनों बैंगलोर घूम सकता था। लौटने से पहले मुझे माता-पिता को उसकी सूचना देनी थी। यह काम सरल था।

मैं बैंगलोर 7 जनवरी को दोपहर 1 बज कर 40 मिनट पर पहुंचा। बिंग (हार्टमैन को सभी इसी नाम से बुलाते हैं) बस-स्टैंड पर अपनी कार में मुझे लेने पहुंचे थे। हम उनके घर गए। कार में वो मेरे से प्रश्न पूछते गए और मैं उनका जवाब देता गया। घर में उज्जवला और उनके दो बच्चे थे - जुरी और उसका छोटा भाई जईर। घर में उस समय श्रीमती कलाई भी थीं। वो *इंडिया फाउंडेशन फॉर द आर्टस* में बिंग के साथ काम करती थीं।

कुछ देर आराम करके मैंने पेट भरकर अच्छा खाना खाया। बिंग ने बताया कि वे बैंगलोर में कुछ ऐसे लोगों और संस्थाओं को जानते हैं जो मेरी रुचि के क्षेत्रों में कार्यरत हैं और मुझे उनसे मिलना चाहिए। मुझे इसका कोई अंदाज नहीं था कि मैं जिनसे मिलूंगा उनका सुझाव होगा कि मैं और लागों को मिलूं। बिंग भी उनसे मिलने पर जोर देते। इसलिए तमाम लोगों से मुलाकात करते और वाइल्ड-लाइफ से संबंधित संस्थाओं को पत्र लिखते हुए मैंने बैंगलोर में काफी दिन बिताए।

बिंग एक अच्छे दरोगा थे जो किसी को जल्दी नहीं बख्शते थे। जिन लोगों से मझे मिलना था अगर वो उस समय बैंगलोर में नहीं थे या मुझ उनसे पत्राचार करना था। इसके परिणामस्वरूप मैंने कई पत्र लिखे। इस अभ्यास का एक ही उददेश्य था कि अगर मैं वाइल्ड-लाइफ क्षेत्र में काम करने का इच्छुक था तो मुझे सभी सम्भावित विकल्पों से परिचित होना चाहिए था। बिंग ने मुझ से कुछ और जानकारी भी हासिल करने

को कहा। मुझे पता करना था कि ये तमाम लोग पर्यावरण के क्षेत्र में क्यों आए और क्या वे अपने काम से खुश थे।

बिंग ने मेरे लिए एक औपचारिक परिचय-पत्र बनाया था। मैं जिसस भी मिलता उसे परिचय-पत्र की एक प्रति थमा देता। परिचय-पत्र पर बिंग के हस्ताक्षर थे। उसमें लिखा था कि मैं कॉलेज से छुट्टी लेकर पिछले आठ महीने से वाइल्ड-लाइफ क्षेत्र में कार्यरत था और मैं उनका इंटरव्यू लेन को इच्छुक था। मैंने इंटरव्यू के लिए प्रश्नों की सूची भी बनाई थी। बिंग उस व्यक्ति को फोन करके उसस मेरे मिलने का समय तय करते। कभी-कभी वो मुझे उस व्यक्ति के घर तक छोड़ भी आते। कभी मैं अकेले रिक्शा से जाता था।

मैं सबसे पहले श्री टी परमेस्वरअप्पा से मिला। वे सेवानिवृत्त प्रमुख वन निरीक्षक थे। मैं उनके घर पर पौने बारह बजे पहुंचा। मुझे साढ़े बारह बजे उनसे मिलना था। परन्तु श्री परमेस्वरअप्पा कहीं गए थे और वो डेढ़ बजे ही घर पहुंचे। इसलिए उस दौरान मैंने उनके आफिस में रखी कुछ पुस्तकें पढ़ीं। उनके आने के बाद बातचीत शुरू हुई - पहले मेरी छुट्टी के बारे में और फिर मैं भविष्य में क्या करना चाहता था उसके संबंध में।

उन्होंने मुझे बताया कि स्नातक की डिग्री प्राप्त करने के बाद मुझे लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित परीक्षा में बैठना चाहिए। चुने हुए छात्रों को प्रशिक्षण के लिए जंगलों में भेजा जाता है। एग्रीकल्चरल यूनिवर्सिटी धारवाड़ या हेब्बल में चार वर्ष के '*फारेस्ट्री*' कोर्स को प्री-यूनिवर्सिटी के बाद पूरा किया जा सकता है। *वाइल्ड-लाइफ रिसर्च इंस्टिट्यूट* में भी कुछ लघु-अवधि के कोर्स उपलब्ध होते हैं, परन्तु स्नातक पास होने के बाद लम्बी-अवधि के कोर्स अवश्य उपलब्ध होंगे।

मैंने उनसे कुछ प्रश्न भी पूछे और उस साक्षात्कार को मैं यहां संक्षिप्त में पेश कर रहा हूं:

राहुल: क्या बनरघट्टा अभयारण्य का रेंजर किसी निजी व्यक्ति को पार्क का दौरा करा सकता है?

परमेस्वरअप्पा: नहीं। सैलानियों के लिए पार्क में सामान्य सफारी होती है। पर अगर तुम पार्क को घूमना चाहते हो तो तुम डिप्टी कंजर्वेटर श्री वेंकटेश को मिलकर मेरा हवाला दे सकते हो।

र: अभयारण्य की कैसे हालात हैं?

प: पार्क सरकार की पहल से बना है इसलिए वहां कुछ अच्छी बातें, और कुछ खराब बातें हैं।

र: क्या वाइल्ड-लाइफ की पढ़ाई में कुछ अनूठे कोर्स भी हैं?

प: भारत में कोई निजी अभयारण्य, या चिड़ियाघर नहीं है। इसलिए अभयारण्यों या चिड़ियाघरों में नौकरियां भी सरकार की ओर से ही सम्भव हैं। इसलिए इन विषयों में कोई अनूठा कोर्स सम्भव नहीं है।

र: बनरघट्टा अभयारण्य के स्टाफ की ड्यूटी क्या हैं?

प: उनकी एकमात्र ड्यूटी जानवरों की अच्छी देखभाल करना है - इसमें उन्हें खाना खिलाना और उनके परिवेश को साफ रखना शामिल है। अभयारण्य का स्टाफ जानवरों पर शोधकार्य नहीं करता है।

र: आप प्रमुख वन निरीक्षक के पद पर कैसे पहुंचे? आपकी पृष्ठभूमि क्या थी?

प: तुम्हारी ही तरह मुझे पढ़ना पडा। मैं एक परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ और मुझे फारेस्ट आफिसर की नौकरी मिली। बाद में मैं दो साल के लिए अमरीका गया और वापस आने पर मुझे प्रमुख वन निरीक्षक के पद पर मनोनीत किया गया।

र: क्या सांपों के विष के उत्पादन के लिए एक सर्प-उद्यान खोला जा सकता है?

प: यह बिल्कुल सम्भव है। पर जंगली सांपों को बंधक रखने के लिए पहले लाइसेंस लेना पड़ेगा। पुणे सर्प-उद्यान को उसका तरीका पता होगा और अगर तुम उन्हें लिखोगे तो वे तुम्हें इसकी विस्तृत जानकारी देंगे।

श्री परमेस्वरअप्पा निहायत दोस्ताना और मददगार इंसान निकले। लौटन से पहले मैंने उन्हें वो पत्र दिखाए जो मैंने *इंदिरा गांधी रिसर्च इंस्ट्टियूट* और *इंडियन वाइल्ड-लाइफ रिसर्च इंस्ट्टियूट* को लिखे थे।

मेरी दूसरी मुलाकात श्री अरुन कोटान्कर के साथ थी। वे 'सम्वाद' नामक संस्था के संचालक थे। इस संस्था का बैंगलोर में एक कार्यक्रम था 'स्माइल' (यानि *स्टूडेंट मोबिलाइजेशन इनिशियेटिव फॉर लर्निंग*)। वैसे मुलाकात 12 बजे होनी थी पर मैं उनके दफ्तर साढ़े दस बजे ही पहुंच गया। मैंने उन्हें अपना परिचय-पत्र दिखाया और फिर उन्होंने मुझसे बातचीत शुरू की।

श्री कोटान्कर ने मुझे बैंगलोर में 'स्माइल' कार्यक्रम के बारे में बताया। शनिवार दोपहर को संवाद के दफ्तर में एक अनऔपचारिक खुला मंच होता है। तब लोग फिल्म देखते हैं, संवाद करते हैं और छात्रों के विशेष मुद्दों पर चर्चा करते हैं जैसे - सैर-सपाटा, दहेज, बच्चों का शोषण, या मछुआरों के संघर्ष। इसके अलावा वे विवाह, प्रेम, शिक्षा और पालकों के ऊपर भी चर्चा करते हैं।

वहां से छात्र दलित बस्तियों, आदिवासियों, सड़क पर सोने को मजबूर बच्चों, मछुआरों आदि के साथ काम करने वाली संस्थाओं में जाते हैं। वहां वे पर्यावरण संरक्षण भी सीखते हैं। अगर छुट्टियों में छात्र दूर-दराज नहीं जा सकते हैं तो उनसे स्थानीय आंदोलनों में भाग लेने या बाल-मजदूरी, पर्यावरण प्रदूषण या निर्माण मजदूरों की समस्याओं को समझने का काम दिया जाता है।

वहां पर छात्र 'शोधने' (यानि खोज) नाम की एक पत्रिका निकालते ह। इसमें छात्र अलग-अलग शिविरों में भाग लेने के बाद अपने अनुभवों, सामाजिक सोच और चिंतन के बारे में लिखते हैं। इस पत्रिका में छात्र लेख, कविताएं, कार्टून और कहानियों को कन्नड़ अथवा अंग्रेजी में लिख कर भेज सकते हैं। श्री कोटान्कर ने जो कुछ भी मुझ इस संस्था के बारे में बताया उसे सुनकर मुझे बहुत आनंद हुआ।

उसके बाद मैं सीधा सेंट जोजेफ्स कॉलेज गया जहां बिंग के अनुसार पर्यावरण विषय के तमाम कोर्सों में से छात्र अपनी रुचि का कोर्स चुन सकते थे। मैं कॉलेज में एक क्लर्क को मिला जिसने मुझे इनके बारे में जानकारी दी। उसने मुझे कोर्स की एक सूची भी दी जिन्हें स्नातक की डिग्री के बाद छात्र ले सकते थे।

उसके दो दिनों के बाद मैं सुबह 11 बजे डा हरीश गांवकर से उनके घर पर मिलने गया। वो और उनकी पत्नी (जो जर्मन हैं) ने बहुत मित्रता से मुझ से बातचीत की। यह दोनों ही तितलियों के विशेषज्ञ थे।

उनसे मुझे पता चला कि तितलियां वैसे तो कीड़े हैं पर उनका कीड़ों से ज्यादा करीबी रिश्ता पौधों से है। किसी इलाके में पाई जाने वाली तितलियों की प्रजातियों की संख्या से उस इलाके में पाए जाने वाले विभिन्न पौधों की प्रजातियों को संख्या को भी जाना जा सकता है। यह इसलिए संभव है क्योंकि हरेक

प्रजाति की तितली किसी एक विशेष पौधे पर ही अंडे देती हैं। उदाहरण के लिए गोवा में तितलियों की 250 प्रजातियां पाई जाती हैं इसलिए वहां संभवत: 900 से 100 अलग-अलग किस्म के पेड़-पौधे होंगे। किसी वनस्पतिशास्त्री के लिए यह जानकारी दे पाना एक बहुत मुश्किल काम होता। इसीलिए किसी क्षेत्र में तितलियों की प्रजातियों का पता कर वनस्पतिशास्त्री उस इलाके में पाए जाने वाले पेड़-पौधों का प्रजातियों का अच्छा अंदाज लगा सकते हैं।

मादा तितलियां अपने अंडों को पौधों के पत्तों पर विशेष स्थानों पर रखती थीं जिससे कि शिकारी उन्हें खा न पाएं। अंडों में से दो-तीन दिनों में इल्लियां निकल आती हैं। इल्लियां चार-पांच दफा अपनो त्वचा को बदलती हैं (मोल्ट) और उसके बाद ही उनका प्यूपा बनता है। प्यूपा कुछ भी नहीं खाता ह और कुछ दिनों बाद उसमें से तितली बनकर बाहर निकलती है। व्यस्क चरण तक पहुंचने में पांच से आठ हफ्तों का समय लग सकता है। उसके बाद तितली लगभग 2 सप्ताह के लिए जीवित रहती है। अपने जीवन के पहले ही कुछ दिनों में वो अंडों के पहले बैच को पत्तों पर सेयेगी।

कोट-पतंगे यानि *मॉथ्स* ही रेशम बुनती हैं। कोई तितली रेशम नहीं बुनती है। दुनिया में मॉथ्स की कोई 10,000 किस्में हैं - तितलियों की प्रजातियों से कहीं ज्यादा। कुछ तितलियां और मॉथ्स जहरीली भी होती हैं उदाहरण के लिए - *क्रिमसन रोज* जो गोवा में भी पाई जाती है। इस तितली के पंख होते हैं और उसका शरीर लाल रंग का होता है। उसके पंखों पर काले और शरीर पर लाल धब्बे होते हैं। सबसे छोटी तितलियां सिर्फ कुछ सेंटीमीटर लम्बी होती हैं पर सबसे विशाल तितलियां दोनों हथेलियों को पास-पास रखने जितनी बड़ी होती हैं।
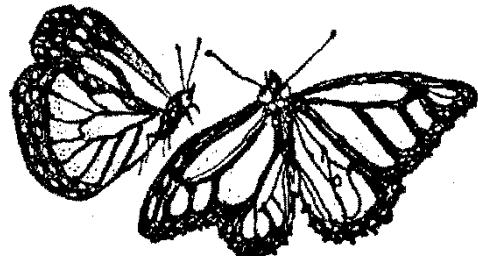
मुलाकात के अंत में डा गांवकर ने मुझे तितलियों पर अनेकों पुस्तकें दिखायीं और इस विषय पर खुद के लिखे कुछ निबन्ध भी दिखाए। दोपहर डेढ़ बजे मैं उनसे विदा लेकर एम ई एस कॉलेज गया जहां मुझे उसी दिन डा लीला से मिलना था। उनके पास मैंने संरक्षित डौल्फिन और *हैमर-हैड शार्क* के नमूने देखे।

बैंगलोर का प्रवास मेरे लिए एक अन्य कारण से बहुत विशेष रहा। बिंग ने *टाईम्स ऑफ इंडिया* अखबार से साथ जुगाड़ लगाकर मेरा प्रोग्राम फिट किया था। बैंगलोर के *टाईम्स ऑफ इंडिया* में एक विशेष खंड है जिसका नाम ह '*न्यूजपेपर इन एड्यूकेशन*' यानि एनआईई। एनआईई स्कूलों में विभिन्न विषयों पर वर्कशाप्स आयोजित करता है। 20 जनवरी को मैं महात्मा गांधी रोड पर स्थित *टाईम्स ऑफ इंडिया* के ऑफिस में गया और वहां मैंने एक व्यक्ति को काफी देर अपने पिछले साल के अनुभवों के बारे में बताया। उसने पूछा कि क्या मैं अगले कुछ दिनों में स्कूलों में जाकर बच्चों के साथ अपने अनुभव बांटना चाहूंगा। मुझे पक्की तरह से नहीं पता था कि मैं उस काम को सही तरीके से अंजाम दे पाऊंगा पर मैंने एक साल की अपनी छुट्टी के दौरान एक सबक जरूर सीखा था - एक बार कोशिश जरूर करो क्योंकि अक्सर चीजें उतनी मुश्किल नहीं होती हैं जितनी वो लगती हैं। इसलिए मैंने हामी भरी।

मेरी पहलो वर्कशाप 22 जनवरी को थी। मुझे आयोजक एनआईई से *श्रीवाणी एड्यूकेशन सेंटर* ले गए। वहां मुझे कक्षा आठवीं के बच्चों को सम्बोधित करना था। मैं 35 मिनट बोलना चाहता था और अंत के 10-मिनट मैंने छात्रों के प्रश्नों और चर्चा के लिए रखे थे। शुरू में मैं जरूर थोड़ा घबराया हुआ था। पर

क्योंकि बच्चों ने काफी ध्यान से मेरी बातें सुनीं इससे मैं फिर मुक्त होकर बोलने लगा। मेरा सत्र खत्म होने के बाद मुझे घर पर या फिर हार्टमैन के दफ्तर में छोड़ दिया जाता था। कुछ स्कूलों में वर्कशाप करने के बाद मैं इस कार्य में अभ्यस्त हो गया और मुझे इन सत्रों को लेने में मजा आने लगा। मुझे यह जानकर बहुत खुशी हुई कि हरेक सत्र के लिए मुझे 100 रूपए मेहनताना और आने-जाने का खर्चा दिया जाएगा।

वर्कशाप के दौरान मैंने एक साल की अपनी छुट्टी की कहानी सुनाता - विचार कैसे आया, मैं कहां-कहां गया और इस दौरान मैंने क्या-क्या किया। उसके बाद मैं दो विषयों पर भाषण देता - केंचुओं और सांपों पर, क्योंकि मुझे लगता था कि इन विषयों में छात्रों की विशेष रुचि होगी। *वर्मीकल्चर* से वे अपने घरों के कचरे को खाद में बदल सकते थे। सांपों से लोग क्योंकि भयभीत होते हैं इसलिए वे इस विषय पर ज्यादा जानने के इच्छुक होते हैं।

वर्मीकल्चर में जब मैं गोबर और मिट्टी को मिलाने की बात करता तो कुछ लड़कों और लड़कियों को यह थोड़ा अटपटा लगता था और वे इसका मजाक उड़ाते और हंसते। मुझे लगता था कि यह शहरी छात्र हैं और उन्हें गोबर के महत्व के बारे में कुछ पता नहीं है। उसके बाद भी मैं उन्हें घर में *वर्मीपिट* बनाने के बारे में बताता।

सांपों पर सबसे पहले मैं उन्हें विषैले और गैर-विषैले सांपों का परिचय देता। फिर उन्हें विषैले सांपों की पहचान करना बताता। सांप काटने पर क्या करना चाहिए, फिर उन्हें उसकी जानकारी देता। मैं सांपों के बारे में लोगों में प्रचलित तमाम मिथकों के बारे में चर्चा करता, और उनमें क्या सही, क्या गलत है यह भी बताता। अगर समय बकाया होता तो फिर मैं उन्हें मगरमच्छों, कछुओं और मकड़ियों के बारे में भी बताता।

सत्र के अंत में मैं उन्हें मगरमच्छों के दांतों के साथ-साथ सांपों, मगरमच्छों और *मॉनीटर लिजर्डस* के साथ अपने फोटोग्राफ दिखाता। अंत में मैं उन्हें अपने *रेड-ईयर्ड* कछुए को दिखाता जिसे मैं हमेशा अपने थैले में साथ रखता था। इससे छात्र सबसे अधिक उत्तेजित होते थे। सब छात्र कछुए के पास घेरा बनाकर खड़े होते और उनमें से कुछ उस हाथ में उठाना चाहते थे। कई छात्र उसके भोजन के बारे में जानना चाहते थे। मैं छात्रों को केवल कछुए का ऊपर सख्त कवच छूने देता था क्योंकि मेरा कछुआ काफी दुष्ट था और वो काट सकता था।

इस प्रकार मैंने कई स्कूलों में वर्कशाप्स कीं। इनमें नैशनल इंग्लिश स्कूल, सिंधी स्कूल, सेंट मेरीज स्कूल, बोलिवियन गर्ल्स स्कूल और बैंगलोर इंटरनैशनल स्कूल शामिल थे। अक्सर मैं सातवीं से दसवीं के बच्चों को सम्बोधित करता था। पर बैंगलोर इंटरनैशनल स्कूल में यह कार्यशाला तीसरी और चौथी के बच्चों से साथ हुई।

कुछ महीनों बाद गोवा में पोस्टमैन ने मुझे एनआईई, बैंगलोर से आया एक रजिस्टर्ड लिफाफा दिया। मैं बहुत खुश हुआ क्योंकि उसमें 1075 रूपयों का एक चेक था जो मेरे लेक्चर देने की कमाई थी। बाद में मैंने अपनी एक साल की छुट्टी के बारे में '*हिन्दुस्तान टाईम्स*' के लिए एक विस्तृत लेख लिखा जिसकी प्रति मैंने एनआईई को भी भेजी और उन्होंने भी उसे अपने अखबार में छापा। '*न्यूजपेपर इन एड्यूकेशन*' ने मुझे एक खुला निमंत्रण दिया है - कि जब कभी भी मैं बैंगलोर में हूं मैं स्कूलों में जाकर और भी वर्कशाप्स ले सकता हूं।

स्कूली छात्र मेरे कछुए को छूने के लिए सबसे अधिक उत्साहित होते थे। कछुए को मैं हमेशा अपने साथ रखता था।

बैंगलोर में मैंने और भी बहुत मौज-मस्ती की। एक सुबह मैं कालिया के साथ स्विमिंग-पूल में तैरने गया। पानी में कूदने पर मुझे नानी याद आई - क्योंकि वहां पर पानी बर्फ जैसा ठंडा था! उसके बाद मैंने बैंगलोर में सर्दी के मौसम में कभी न तैरने की कसम खाई।

दिन के समय मैं अक्सर बाहर ही खाता था और उसके लिए मैंने कई छोटी जगहों को खोज निकाला था (बैंगलोर में खाने के अनेकों होटल हैं)। यहां मैं दक्षिण भारती भोजन, सब्जी की कटलेट्स, मिल्कशेक और अन्य व्यंजनों का मजा लेता था। मुझे हमेशा अपनी जेब में पैसों पर नजर रखनी पड़ती थी क्योंकि कुड़की के कारण मैं मंहगे होटलों में नहीं खा सकता था। कभी-कभी में किताबों की दुकानों में जाता था और कभो बिंग और उज्जवला के छोटे-मोटे काम भी करता था। मैंने बिंग की दो बार खाना बनाना में मदद की। मैं कभी-कभी उज्जवला की बागवानी में भी सहायता करता था।

बिंग, उज्जवला और उनके दोनों बच्चों के साथ अक्सर मैं भी सैर-सपाटे पर जाता। एक बार हम सैन्की टैंक नाम के ताल पर गए। वहां मोटरबोट में सवारी करने में मुझे बड़ा मजा आया। बाद में मैं जुरी और जईर के साथ बाल-उद्यान में खेलता रहा। एक बार हम सब लोग एक डांस देखने गए। वो मुझे कुछ भी पल्ले नहीं पड़ा। कभी-कभी हम कार में बैठकर शहर का चक्कर लगाते (इनमें मुझ सबसे ज्यादा मजा आता) और घर लौटते समय सब लोग आईसक्रीम खाते थे।

जब मैं अपनी यात्रा की योजना बना रहा था तो मेरे माता-पिता ने मुझे आगाह किया था कि बहुत सी जगहों पर मुझे केवल शाकाहारी खाना ही मिलेगा और यह वाकई में सच भी निकला। छुट्टी के पूरे साल मैंने अलग-अलग लोगों के घरों में तरह-तरह का भोजन खाया। मैं केवल गिनीचुनी सब्जियां - पत्तागोभी और आलू ही खाता, नहीं तो रोटियों को दाल और अचार के साथ खाता। तब तक मैंने भिंडी और बैंगन जैसी सब्जियां खाना शुरू नहीं किया था। बिंग बातचीत में सब्जियों के बारे में मेरी नापसंदगी जान

गया। भोजन के ऊपर झिकझिक बिंग को बेहद नापसंद थी। इसलिए रोजाना भोजन के समय वो मेरी थाली में ढेर सारी सब्जी परोस देता, खासकर वो सब्जियां जिनसे मुझे घृणा थी जैसे - टमाटर, बैंगन और भिंडी।

मैं सब्जियों को पहले खत्म करता था जिससे कि मैं अंत में गोश्त और मछली का मजा ले सकूं और उनके साथ मुझे नापसंद सब्जियों को न खाना पड़े। पर जैसे ही मैं सब्जियां खत्म करता वैसे ही बिंग कहता, 'लगता है तुम्हें यह सब्जी बहुत पसंद आई है! लो थोड़ी और लो!' यह कहकर मेरे विरोध के बावजूद वो मेरे थाली में ढेर सब्जी डाल देता था। इसलिए मैं भोजन समाप्त करने तक सामान्य से तीन-गुनी ज्यादा सब्जियां खाने को मजबूर था!

अंतत: मैं बैंगलोर में तीन हफ्ते रहा और 30 जनवरी को ही घर लौटा। मैं अपने माता-पिता और भाईयों से तीन महीनों से नहीं मिला था और मैं उन्हें अपने अनुभव सुनाने को बेहद उत्सुक था। दुर्भाग्यवश घर लौटने के बाद मुझे अपने माता-पिता के साथ केवल एक घंटे का ही वक्त मिला। वो उसी दिन 'विश्व पुस्तक मेले' में भाग लेने दस दिनों के लिए दिल्ली जा रहे थे। उनके साथ में '*अदर इंडिया बुकस्टोर*' के कुछ कर्मचारी भी जा रहे थे। इसलिए मुझे अपनी रामकहानी सुनाने के लिए उनके आने का इंतजार करना पड़ा।

पर इस बीच मेरे दोनों छोटे भाई मेरी यात्रा के अनुभवों को सुनने का उत्सुक थे। मेरे पड़ोसियों ने मुझे पांच महीनों बाद देखा था और वे भी मुझ से मिलना चाहते थे। मेरा पुराना मित्र अशोक तो मेरी वापसी पर बहुत खुश हुआ और उसने दिल खोलकर मेरा स्वागत किया।

अध्याय १२

तुम देख सकते हो, मेरे पास दृष्टि है

मैं लगभग पूरी फरवरी घर पर ही रहा। उसका एक कारण था कि मेरे माता-पिता 15 दिनों के लिए बाहर थे और उन्होंने मेरे उस दौरान मुझसे घर सम्भालने को कहा था। मुझे अपनी साल भर की छुट्टी के बचे हुए महीनों के लिए कोई ठोस योजना बनानी थी। पत्र लिखने पर लोगों के जवाब आने में भी कई दिन लगते थे।

मैंने एक साल को छुट्टी में जो कुछ भी करने का मन बनाया था वो सब मैं कर चुका था। पर फिर भी कुछ क्षेत्र थे - जैसे मधुमक्खियां की देखरेख जिनके बारे में अभी भी कोई ठोस कार्यक्रम नहीं बना था।

यह समय मैंने उन विशेष निबन्धों को लिखने में बिताया जिन्हें मैं अभी तक पूरा नहीं कर पाया था। (वैसी मेरी डायरी में नवीनतम अनुभव और घटनाएं दर्ज थीं।)

मैंने घर के पिछवाड़े में एक *वर्मीकम्पोस्ट* गड्ढा भी बनाया। मेरे पिताजी ने कहा था कि केंचुओं के बारे में मुझे अपनी सीख को तुरन्त व्यवहार में लाना चाहिए। उनके अनुसार सभी घरों में कचरे का प्रबंधन बहुत मुश्किल हो चला था। वो चाहते थे कि मैं घर में ही *वर्मीकम्पोटिंग* करके उसका व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करूं। उसके बाद मैं मित्रों के घरों में भी उसी प्रकार के यूनिट्स लगा पाऊंगा। बाद में जो भी कचरे को खाद में बदलना चाहता था म उनकी मदद कर सकता था।

पिताजी ने सुझाव दिया कि मैं एक बड़ा *वर्मीपिट* बनाऊं जिसे कि कोई भी बड़ा परिवार अपने पिछवाड़े में बना सके। साथ में मैं दो छोटे *वर्मीपिट* भी बनाऊं जो छोटे फ्लैट्स में रहने वाले लोगों के लिए उपयोगी हों। हरेक गड्ढे में नियमित रूप से कचरा डालकर हम उन्हें चालू रखते थे। इससे हमें इन वर्मीपिटों के विषय में अच्छा अनुभव मिलता था और पूंछने वालों को हम यह जानकारी दे सकते थे।

इसलिए शुरू में मैंने एक *वर्मीबेड* बनाया। उसकी मुख्य टंकी मैंने ईंटों की बनाई। उस समय एक मजदूर हमारे घर पर काम कर रहा था। उसने कहा कि उसे सीमेंट से ईंटें जोड़ने का काम आता था। फिर हम दोनों ने मिलकर 3-फीट लम्बी 2-फीट चौड़ी और 4-फीट ऊंची एक टंकी बनाई। इसके लिए हमने अंदाज से रेत और सीमेंट को पानी में मिलाया। हमने एक दिन में ईंटों को सीमंट के गारे से जोड़कर टंकी तैयार कर दी। यह काम मुझे काफी आसान लगा और मैंने अपनी डायरी में ईंटों की संख्या और रेत और सीमेंट की मात्रा दर्ज की।

अगले दिन मैंने याद से टंकी को पानी से गीला किया जिससे कि सीमेंट मजबूत हो जाए। तीसरे दिन मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब मैंने टंकी को हिलते और टूटते हुए देखा। मैं दौड़कर अपने पड़ोसी गुरू के पास गया। गुरू ने देखकर कहा कि टंकी को पूरी तरह तोड़कर उसे फिर दुबारा से बनाना पड़ेगा। गारा बनाते समय हम सीमेंट और रेत के अनुपात में गड़बड़ा गए थे। हमने ईंटों की चुनाई भी ठीक से नहीं की थी। हमने ढांचे के लिए नींव तक तैयार नहीं की थी। आज मुझे पता चला कि राजमिस्त्री का काम इतना आसान नहीं था।

फिर मैंने बड़ी सावधानी और मेहनत से हरेक ईंट को एक-एक करके निकाला जिससे कि वे टूटे नहीं और हम उनको दुबारा इस्तेमाल कर पाएं। फिर कुशल राजमिस्त्री गुरू ने टंकी बनाई और मैंने उसकी

मदद की। असल में उस दिन हमने दो टंकियां बनायीं - एक बड़ी और दूसरी मध्यम आकार की। उसके बाद इन टंकियों में मैंने *वर्मीपिट्स* में बदला। हमारी नौकरानी येसू से घर का सभी कचरा (कागज और प्लास्टिक छोड़कर) इन गड्ढों में डालने को कहा गया। एक गड्ढा भरने के बाद दूसरे में कचरा डालना था।

हमने एक लकड़ी की पेटी में भी वर्मीकल्चर शुरू किया। बाद में इस क्रेट को बीज अंकुरित करने के लिए उपयोग पाया गया और उनमें कटहल के उच्च कोटि के छोटे पौध पैदा हुए। ईंटों के बने दोनों *वर्मीपिट्स* अब भी सुचारू रूप से काम कर रहे हैं और हमारे घर का सभी कचरा केंचुए खाद में परिवर्तित करते हैं।

फरवरी के अंत में मैं फिर सैर करने को उतावला हुआ। वैसे मेरे पिताजी ने मधुमक्खी पालने वाले कुछ लोगों को लिखा भी था परन्तु इस विषय में मुझे कोई खास रुचि नहीं थी। मगरमच्छ, सांप और जंगली जीवों के अनुभवों के बाद मैं मगरमच्छ केंद्र में वापस जाने को उतावला था।

पर जंगली जीवों से बिल्कुल अलग एक और कार्यक्रम था जिसमें मैं अपनी आंखों की रोशनी को बेहतर करना चाहता था। इसके लिए मुझे अरविन्द आश्रम, पौंडीचेरी जाकर आंखों के कुछ अभ्यास सीखने थे।

मुझे *'आंख के दवाखाने'* के बारे में फरीदा से पता चला। फरीदा मगरमच्छ केंद्र में रहती थी। मैं चौथी कक्षा से चश्मा पहन रहा हूं। तब मां ने पाया कि मैं आलसी नहीं था, पर आंखें कमजोर होने के कारण मैं कापी में लिख नहीं पाता था। मुझे ब्लैकबोर्ड पर लिखी चीज ठीक से दिखाई ही नहीं देती थी। उसके बाद मुझे आंख के डाक्टर के पास ले जाया गया और तब से मैं चश्मा पहन रहा हूं।

जब मैंने सुना कि आंखों के अभ्यास से चश्मा छूट सकता था तब से मैं उन्हें सीखने को उत्सुक था। असल में मैंने इन अभ्यासों को मेडिकल मिशन सिस्टर जेमा के साथ करना शुरू किया था। सिस्टर जेमा मेरे माता-पिता के काम में जुड़ी थीं। मैंने इन अभ्यासों को मगरमच्छ केंद्र के प्रवास के दौरान भी जारी रखा था। वहां जब फरीदा ने मुझे आंखों के अभ्यास करते देखा तब उसने मुझे अरविन्द आश्रम स्थित *'आई क्लीनिक'* जाकर सही ट्रेनिंग लेने का सुझाव दिया।

मैं अपने प्रिय मगरमच्छ केंद्र में भी जाने को बहुत इच्छुक था। और क्योंकि पांडीचेरी, मामल्लापुरम से बहुत दूर नहीं था इसलिए मंने अपने माता-पिता से आग्रह किया कि वे मुझे बैंगलोर होकर पांडीचेरी जाने की अनुमति दें जिससे की मैं आंखों का उपचार कराकर, गोवा वापस आने से पहले 15 दिनों के लिए मगरमच्छ केंद्र जा सकूं। इससे मैं मार्च में घर से दूर रह सकता था और मेरे भाई परीक्षाआं के लिए निर्विघ्न पढ़ सकते थे। मैं अप्रैल-मई में गर्मियों की छुट्टियों के समय फिर घर वापस आ सकता था। तब मेरे चचेरे भाई लूसैनो और रिकार्डो भी बेलगाम से हमारे घर आते और हम सब मिलकर गर्मियों में आम और कटहल खाते और समुद्र के किनारे पिकनिक मनाने जाते।

मेरे माता-पिता ने इस कार्यक्रम को अपनी मंजूरी दी और फिर 26 फरवरी को मैं पौंडीचेरी के लिए रवाना हुआ। अब मैं यात्रा करने में काफी अभ्यस्त हो चुका था और किसी को मुझे बस-स्टैंड में लेने आने की जरूरत नहीं थी। मैंने गोवा से ही औरोवेल में रहने वाले बर्नाड को टेलीफोन कर दिया था। औरोवेल में मैं बर्नाड के साथ ही रहने वाला था।

मैंने गोवा से बैंगलोर जाने वाली रात की बस में पकड़ी। दिन में मैं कुछ समय के लिए हार्टमैन के घर पर जाकर सुस्ताया। फिर रात को मैंने बैंगलोर से पौंडीचेरी की बस पकड़ी जिसने सुबह 4 बजे मुझे मेरे मुकाम पर पहुंचाया। वहां एक रिक्शा वाले ने मुझे ठगा। उसने औरोवेल ले जाने की बजाए मुझे अरविन्द आश्रम लाकर छोड़ दिया - जो बस-स्टैंड के बिल्कुल समीप था।

मुझे औरोवेल जाने के लिए एक अन्य स्थानीय बस लेनी पड़ी। पौंडीचेरी से आरोवेल दस किलोमीटर दूर था। बस से उतर कर कुछ देर चलने के बाद मैं बरनार्ड को मिला। मैं बरनार्ड को जानता था क्योंकि मैं औरोवेल में पहली ट्रिप में उसे मिल चुका था। मैं बरनार्ड के साथ बिना किसी खर्चे के रहा और मैंने उसके हाथ का पकाया खाना खाया।

मैं रोजाना बरनार्ड के घर से पौंडीचेरी तक साइकिल पर जाता था। आश्रम में मैं आंखों का अभ्यास करके फिर दुबारा वापस आता था। इस तरह मैं रोजाना 45-किलोमीटर साइकिल चलाता था। यानि वहां नौ दिनों के प्रवास में मैंने 360-किलोमीटर साइकिल चलाई।

आश्रम की इमारत काफी पुरानी थी। अंदर जाने से पहले चप्पलों को बाहर छोड़कर उनपर एक नम्बर वाला प्लास्टिक का बिल्ला रखकर जाना होता था। उसी नम्बर का एक बिल्ला आप अपनी जेब में रखकर नंगे पांव आश्रम की सीढ़ियों पर चढ़ते। वहां के माहौल मुझे किसी ध्यान केंद्र जैसा लगा। वहां हर समय धीमी शास्त्रीय संगीत की धुनें बजती रहती थीं।

आंखों का पहला अभ्यास बहुत मुश्किल था। मैं लम्बी साइकिल यात्रा के बाद आंखों के दवाखाने में पहुंचता और वहां सबसे पहले मेरी आंखों में शहद की बूंदें डाली जाती थीं। फिर मुझे धूप में पसीने से लथपथ खड़ रहना पड़ता था और तब शहद से मेरी आंखें बुरी तरह जल रही होती थीं। (शहद जीभ पर मीठा होता है पर आंखों को जलाता है।)

मुझे एक अंधेरे कमरे में केवल मोमबत्ती की रोशनी में बारीक अक्षरों को पढ़ना पड़ता था।

अगले अभ्यास में मुझे बारीक अक्षरों को अंधेरे में केवल एक मोमबत्ती की रोशनी में पढ़ना होता था। फिर उसी अभ्यास को बाहर धूप के प्रकाश में दोहराना पड़ता था। फिर एक रबर की गेंद से आंख की गति का समन्वय करना होता था। उसके बाद चार्ट पर लिखे अक्षरों को पढ़ना होता जो बड़े से छोटे होते

जाते। फिर आंखों को भाप से सेंक कर उन्हें रूई को ठंडे पानी में भिगोकर ठंडा करना पड़ता। अंत में '*कलर ट्रीटमेंट*' था जिसमें एक आपको रंगीन प्रकाश की रोशनी को एक अंधेरे कमरे में घूरना पड़ता था।

हरेक अभ्यास को निश्चित बार करना पड़ता - जिसमें आंखों को बंद करना, खोलना, झपकना आदि को बड़ी नियमितता से करना पड़ता था। आंखों का अभ्यास खत्म करने के बाद मैं अपने वॉकमैन पर रॉक म्यूजिक सुनता हुआ, साइकिल चलाता हुआ औरोवेल लौटता था।

आश्रम में आंखों के उपचार के लिए कोई फीस नहीं थी। पर अंत में इन अभ्यासों को जारी रखने के लिए मुझे दवाईयों के लिए 77 रूपए देने पड़े जिसमें 4 बोतलों में आंखों में डालने वाली दवा थी, दो बोतलों में शहद, एक रबर की गेंद, दो चार्ट और दो बारीक अक्षरों की पुस्तकें थीं।

मुझे उस उपचार से काफी लाभ हुआ। एक महीने तक नियमित अभ्यास के बाद मैं बिना चश्में के पढ़ने लग गया। मैं अभी भी आंखों का अभ्यास करता हूं पर इतनी नियमितता से नहीं। सबसे अच्छी बात यह है कि बचपन से चश्मा पहनने के बाद अब मैं कभी-कभी ही इसका इस्तेमाल करता हूं जैसे टेलीवीजन और फिल्में देखते समय। हमारे घर में टेलीविजन नहीं है इसलिए मैं बहुत कम फिल्में ही देखता हूं।

आंखों का इलाज पूरा होने के बाद मैं मगरमच्छ केंद्र को दुबारा देखने को उत्सुक था। वहां जाने का कार्यक्रम पहले से ही टेलीफोन पर पक्का हो गया था। इसलिए मैं फिर से 7 मार्च वाले दिन मम्मालापुरम के लिए रवाना हुआ।

यात्रा के दौरान मेरे साथ एक मजेदार पर मंहगी घटना घटी।

मैं सुबह को ही अंर्तरराजीय बस-स्टैंड पर पहुंच गया और फिर 8 - 9 बजे तक मम्मालापुरम जाने की बस का इंतजार करता रहा। लोगों से पूछताछ के बाद एक ड्राइवर ने मम्मालापुरम जाने वालो की ओर इशारा किया।

मेरे बस में घुसने से पहले ही एक आदमी कंडक्टर की वर्दी पहने मेरे पास आया और उसने मुझसे पूछा, 'तुम्हें कहां जाना है?' मैंने उत्तर दिया, 'मम्मालापुरम'। 'चलो मेरे साथ,' उसने कहा। फिर हम दोनों बस में चढ़े। मैं एक सीट पर बैठा और उसने मेरा सामान ऊपर सामान कक्ष में रखा। 'टिकट', उसने पूछा। 'कितने पैसे?' मैंने पूछा। 'पच्चीस रुपए,' उसने जवाब दिया। मैंने उसे उतने पैसे थमा दिए।

कुछ देर बार बस चली। थोड़ी देर बाद एक नए कंडक्टर को पास आते देख मुझे बहुत अचम्भा हुआ। वो बाकी मुसाफिरों क टिकट काट रहा था। मैंने उससे कहा कि मैं दूसरे कंडक्टर को पहले ही पच्चीस रुपए का भुगतान कर चुका हूं। पर असल में वो पहले वाला कंडक्टर एक ठग था, जिसने रुकी बस में दिन दहाड़े मुझे ठगा था। मुझे मगरमच्छ केंद्र जाने के लिए दुबारा से 18 रुपए का टिकट कटवाना पड़ा! मुझे इस बात पर ज्यादा आश्चर्य हुआ कि वो आदमी मुझे बस के तमाम मुसाफिरों के सामने ठग सका और किसी मुसाफिर ने अपना मुंह तक न खोला!

इस बार मैं मगरमच्छ केंद्र में केवल एक सप्ताह ठहरा क्योंकि रौम, हैरी और बाकी सभी लोग *नैशनल जियोग्रैफिक* की फिल्म की शूटिंग के लिए केरला जा रहे थे। और अपने सब मित्रों के बिना मैं भला वहां क्या करता।

अध्याय १३

जंगल का सर्वे

उस साल गर्मी की छुट्टियों में मुझे बहुत मजा आया। मेरे चाचा के दोनों लड़के बेलगाम से बिल्कुल समय पर आ गए। क्योंकि उस वर्ष किसी की भी बोर्ड की परीक्षाएं नहीं थीं। इसलिए असल में हमारी छुट्टियां अप्रैल के पहले हफ्ते से ही शुरू हो गयीं। अब हम दो महीने समुद्र का मजा लूट सकते थे और बागा के पास जहां नदी समुद्र में मिलती हैं वहां जब मर्जी चाहे जाकर तैर सकते थे।

एक दिन सुबह पिताजी ने पूछा कि क्या मैं *गोवा फाउंडेशन* द्वारा कॉलेज छात्रों के लिए आयोजित एक प्रोजेक्ट में भाग लेना चाहूंगा। मेरे पिताजी इस फाउंडेशन के कार्यवाही सचिव थे। मैंनें हां कहा। इस प्रोजेक्ट में हमें बेतिम के जंगलों का दौरा करना था और यह मालूम करना था कि कौन से इलाकों में अभी भी जंगल बचे थे और किन क्षेत्रों के जंगल कट चुके थे और उनका किसने सफाया किया था। उस इलाके में कौन सी नई बस्तियां, प्रोजेक्ट आदि लगे थे आदि। इस प्रोजेक्ट में सेंट *जेवियर्स कॉलेज,* माप्सा के दो छात्र भाग ले रहे थे। वे ग्रैज्युएशन कर रहे थे और उनके नाम थे स्टीफेन और जेरी। मैंने एक 'एक्स्ट्रा' की हैसियत से इस टीम में शामिल हुआ था।

20 मई की सुबह को पिताजी और मैं कार में बैठकर बेतिम रवाना हुए। रास्ते में हमने स्टीफेन और जेरी को भी लिया। पिताजी ने हमें वो क्षेत्र दिखाए जिनका वो सर्वेक्षण करवाना चाहते थे और उसके बाद वो चले गए।

स्टीफेन टीम का लीडर था। पिताजी ने उससे पहले बातचीत की होगी। सर्वे में हमें क्या करना है इसकी स्टीफेन को स्पष्टता थी। उसने तुरन्त अपनी नोटबुक निकालकर उसमें कुछ लिखना शुरू कर दिया। मैंने भी अपनी नोटबुक में कुछ चिड़ियां के नाम दर्ज किए। स्टीफेन ने हमें यह भी बताया कि अगर कोई हमसे सवाल-जवाब करे तो हमें खुद को पक्षी-निरीक्षक बताना चाहिए।

हमें जंगल के बींचोंबीच दो गैरकानूनी घर दिखे और बीच मं पेड़ों को काटकर बना एक बड़ा मैदान भी दिखा। पेड़ों को बिजली की आरो से काटा गया था और उनके ठूंठों पर कोलतार पोता गया था जिससे वे दुबारा न बढ़ें। इधर-उधर पेड़ों के लट्ठे पड़े थे। कड़ी धूप में जंगल में चलना एक बहुत मुश्किल काम था और ऐसा लग रहा था जैसे गर्म जूते मेरे पैरों को पक रहे हों। जब हमें कोई पगडंडी दिखती तो स्टीफेन उसके अंत तक जाने का आग्रह करता। जैरी कभी खीज कर कहता, 'स्टीफेन, भला कौन उस सकरी घाटी में पेड़ काटने के लिए जाएगा?' पर स्टीफेन अड़ा रहता और कहता, 'अगर हमने उस पगडंडी की जांच-परख नहीं की तो वो हमारे ईमान को हमेशा कचोटेगी।' इसलिए हमने हरेक पगडंडी का निरीक्षण किया, जांच-परख की चाहें वो कितनी भी सकरी क्यों न हो।

दूसरे दिन मैं अपनी साइकिल पर बेतिम गया। हम कुछ और आगे बढ़े तो वहां हमें दो और गैरकानूनी घर दिखे और पहाड़ी पर एक बड़ा पेड़ कटा मिला। इस पेड़ के ठूंठ पर भी कोलतार पुता था। हम पूरी सुबह अपना सर्वेक्षण करते और दोपहर दो बजे तक ही घर लौटत थे।

तीसरे दिन पिताजी और मेरा चचेरे भाई ल्यूक भी हमारे साथ आए। हमने पिताजी को सर्वे किए हुए अनेकों स्थान दिखाए। साथ में कटे पेड़ और गैरकानूनी घर भी दिखाए। पिताजी एक कैमरा लाए थे जो उन्होंने स्टीफेन को दिया। स्टीफेन ने उससे जंगल के विभिन्न हिस्सों, कटे पेड़ों और गैरकानूनी घरों के भी फोटो लिए। कुछ स्थानों पर पेड़ काटने के बाद नीचे आग लगा दी गई थे जिससे बहुत सी घास और झाड़ियां नष्ट हो गई थीं।

चौथा दिन इस प्रोजेक्ट का अंतिम दिन था। मैं प्रोजेक्ट के खत्म होने से खुश था क्योंकि यह बहुत ही मेहनत-मशक्कत का काम था। मेरा पूरा शरीर कांटों के जख्मों से भरा था जो अब वे सूज गए थे और उनमें खुजली हो रही थी। मेरे पैरों में दर्द हो रहा था और गर्मी भी भयानक थी। पर मैं फिर भी गया क्योंकि अब प्रोजेक्ट खत्म होने वाला था। ऊपर पहाड़ी पर हमें जंगल में गैरकानूनी रूप से बने तमाम घर दिखाई दिए। बीच-बीच बिल्कुल सपाट मैदान दिखे जिनके चारों ओर लोहे के कांटेदार तार की चारदीवारी लगी थी।

उस प्रोजेक्ट में मेरे हिस्से का काम उस दिन पूरा हो गया था। उसके लिए मुझे *गोवा फाउंडेशन* से थोड़ा मानधन भी मिला। स्टीफेन और जैरी ने बाद में फोटोग्राफ के साथ रिपोर्ट लिखी जिसे फाउंडेशन ने फॉरेस्ट विभाग को सौंप दिया। फॉरेस्ट विभाग ने वहां तहकीकात के लिए एक अफसर को भेजा और उसने उस इलाके में निर्माण पर रोक और पेड़ों के काटने पर पाबंदी के आदेश दिए।

अध्याय १४

बेलगाम में मुख्य अतिथि

अब मुझे स्कूल छोड़े एक साल बीत गया था। कितना सुहाना और उत्तेजक था यह साल! पिछले साल की तुलना में अब आगे की कॉलेज पढ़ाई मुझे काफी आसान लगे। पर जैसे ही मैं कॉलेज के फार्म भरने और परिचय-पत्र की तैयारी में लगा था तभी मुझे एक अनूठा और आश्चर्यजनक न्यौता मिला। इसकी मुझे कोई उम्मीद नहीं थी।

मुझे 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर बेलगाम में मख्य अतिथि जैसे आमंत्रित किया गया था। यहां मुझे अपने पिछले साल के अनुभवों पर व्याख्यान देना था। यह एक साल की छुट्टी के दौरान मेरे अनुभवों पर ताजपोशी का मौका था।

यह निमंत्रण मुझे श्री दिलीप कामत ने भेजा था जो कि *पर्यावरण चेतना कार्यक्रम* के आयोजक थ। पिछले महीने उन्होंने और उनके मित्रों ने इस कार्यक्रम को बेलगाम के बच्चों के बीच आयोजित किया था। इस कार्यक्रम में पेंटिंग और निबन्ध लिखने की प्रतिस्पर्धाएं भी शामिल थी। इस कार्यक्रम का अंतिम सत्र 5 जून को आयोजित होना था जहां पर अंतिम चरण में पहुंचने वाले छात्रों और विजेताओं को पुरुस्कार वितरित किए जाने थे।

दिलीप, उनकी पत्नी निलिमा और बेटा सिद्धार्थ हमारे पारिवारिक मित्र हैं। दिलीप अंकल जब कभी गोवा आते हैं वो हमारे घर ठहरते हैं। पर्यावरण कार्यक्रम का उद्देश्य था कि बच्चे खुद सोचकर, दिमाग लगाकर तमाम समस्याओं के हल खोजें। इसीलिए उन्होंने मुख्य अतिथि के रूप में एक युवक को चुना जिसकी बातें बाकी छात्र बेहतर समझ सकें। इसलिए जब मुख्य अतिथि के लिए मेरा नाम सुझाया गया तो कमेटी ने उसे सहर्ष अपनी सहमति दे दी। उन्हें लगा कि पिछले साल में मैंने कुछ असाधारण काम किया था। और क्योंकि मेरा अध्ययन पर्यावरण विषय से सम्बंधित था इसलिए दिलीप अंकल के अनुसार मैं मुख्य अतिथि के लिए बिल्कुल उपयुक्त था।

निमंत्रण पाकर मैं एकदम सातवें आसमान पर था। भला कौन नहीं होगा? दिलीप अंकल ने बताया कि मुझे आने-जाने का पूरा खर्चा दिया जाएगा। मेरे पिताजी के सबसे छोटे भाई बेंजिमिन बेलगाम में रहते थे और मैं आराम से अपने चाचा के घर पर रह सकता था। इसलिए आयोजकों को केवल मेरे बस का खर्च उठाना था।

क्योंकि बेलगाम जाने में अब केवल एक ही हफ्ता बचा था इसलिए मैं अपने भाषण की तयारी करने लगा। मेरे लिए यह एक बहुत महत्वपूर्ण मौका था और उसके लिए मुझे दिल लगाकर तैयारी करनी थी। मैंने इसके लिए मां की मदद ली। उन्होंने भाषण के अहम बिंदुओं के चयन में मेरी मदद की। फिर मैंने पूरे भाषण को लिखा और मां ने उसे सधारा। उसके बाद मैंने उसे कंटस्थ किया।

लोगों के सामने बोलने का मुझे कुछ भय नहीं था। न ही मंच पर खड़े होकर भाषण देने का मुझे कोई डर था। मैं अपने स्कूल में कई बहसों और चर्चाओं में हिस्सा ले चुका था और अंतर-स्कूली स्पर्धाओं में स्कूल का प्रतिनिधित्व कर चुका था। मुझे स्कूल के अंतिम वर्ष में सर्वोत्तम वक्ता का पारितोषिक भी मिला था। फिर भी स्कूल की स्पर्धाओं में बोलना एक बात थी और प्रमुख अतिथि की हैसियत से बोलना अलग बात थी!

मां ने समूह के सामने बोलने के मुझे कई नुस्खे समझाए। अगर संयोग से मैं अपने भाषण की कोई लाइन भूल जाऊं तो उस मौके पर मुझे क्या करना चाहिए। मैंने घर पर अपने भाषण का कई बार अभ्यास किया और फिर मैं 3 जून को बेलगाम के लिए रवाना हुआ। मैंने काफी तैयारी की थी इसलिए मैं आत्मविश्वास से भरा था।

जरूरत के सामान और कपड़ों के साथ-साथ मैं अपने पिट्ठू थैले में *रेड-इयर्ड कछुआ*, एक गोवा का कछुआ, कुछ मगरमच्छों के दांत और सर्प-उद्यान एवं मगरमच्छ केंद्र के अपने फोटोग्राफ भी साथ ले जा रहा था।

4 जून को मैं जब बेलगाम पहुंचा तो वहां बस-स्टैंड पर मेरा चचेरा भाई लूसियानो मुझे लेने आया था। वो मुझे सीधा घर ले गया। उस शाम को दिलीप अंकल हमारे घर आए। उन्होंने मुझे अगले दिन के कार्यक्रम के बारे में बताया। वे अपने साथ वो सारे फोटोग्राफ्स ले गए जिनकी वो अगले दिन हॉल में प्रदर्शनी लगाना चाहते थे।

अगले दिन लूसियानो मुझे शाम तीन बजे समारोह स्थल पर ले गया। समारोह का आयोजन एक स्कूल के हॉल में किया गया था। वहां पर विभिन्न स्कूलों के छात्र अपने पालकों के साथ पहले से ही मौजूद थे। मेरा फोटो एक गत्ते पर चिपकाकर हॉल में एक ओर लटका था। मेरे चाचा बेंजामिन, चाची ग्रेस और मेरे सारे चचेरे भाई भी इस कार्यक्रम में भाग लेने आए थे। कार्यक्रम 4 बजे शुरू हुआ। मेरे वहां पहुंचने तक हॉल काफी भर चुका था। मुझे सबसे आगे की सीट पर बैठाया गया। लूसियानो मेरे पास बैठा था।

कार्यक्रम का सूत्रधार एक छात्र कर रहा था। सबसे पहले डिबेट स्पर्धा क विजेताओं ने अपने भाषण दिए - पहला अंग्रेजी में बोला, बाकी ने अपने भाषण मराठी और कन्नड में दिए। फिर एक छात्र ने मेरा परिचय कराया और मुझे मंच पर भाषण देने के लिए आमंत्रित किया।

5 जून - विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर मुख्य अतिथि की हैसियत से भाषण देते हुए।

मैंने अपना भाषण अंग्रेजी में दिया। मुझे पर दिलीप अंकल द्वारा भाषण को कन्नड में अनुवाद करने के लिए बीच-बीच में रुकना पड़ा। कुछ देर बाद अनुवाद की जरूरत ही नहीं लगी क्योंकि सारे श्रोता अंग्रेजी अच्छी तरह समझते थे। उसके बाद मेरे लिए भाषण दना आसान हो गया। मैंने काफी आत्म-विश्वास के साथ भाषण दिया होगा क्योंकि अंत में लोगों ने काफी देर तक तालियां बजायीं।

जैसा मैंने पहले बैंगलोर के स्कूलों की कार्यशालाओं में किया था मैंने अपने थैले में से *रेड-इयर्ड कछुआ* निकाला और मेरे भाई ने स्थानीय कछुआ अपने हाथ में लिया जिससे कि श्रोतागण उन्हें करीब से देख सकें और जो चाहें वो उन्हें छूकर देख सकें। उसके बाद बहुत से छात्र अपने माता-पिता के साथ कछुओं को हाथ में पकड़कर फोटो खिंचवाने को आतुर थे। जिन लोगों की रुचि थी मैंने उन्हें मगरमच्छ के दांत भी दिखाए।

सूत्रधार ने तब बकाया कार्यक्रम को आगे बढ़ाने का ऐलान किया। क्योंकि बहुत से छात्र प्रश्न पूछने को इच्छुक थे इसलिए प्रश्न-उत्तरों का सत्र नाटकों के बाद रखने का निश्चय किया गया। फिर मैं अपनी सीट पर लौटा और वहां बैठकर मैंने नाटकां को देखा जो सभी पर्यावरण के मुद्दों पर आधारित थे।

उसके बाद पुरुस्कार वितरण का समारोह था। विभिन्न स्पर्धाओं - भाषण, चित्रकारी और नाटक के विजेताओं को पुरुस्कार देने के लिए मुझे मंच पर बुलाया गया।

उसके बाद आयोजकों ने श्रोताओं से मुझसे प्रश्न पूछने को कहा। उन प्रश्नों का मैंने खड़े-खड़े उत्तर दिया। मुझे इस बात की खुशी थी कि श्रोताओं ने मेरा भाषण ध्यान से सुना था क्योंकि छात्रों और पालकों दोनों ने मुझसे काफी सटीक प्रश्न पूछे। इससे मुझे यह भी पता चला कि सांपों से न केवल लोगों का डर लगता है परन्तु लोगों का सांपों के प्रति एक विशेष आकर्षण भी होता है। समारोह स्थल छोड़ने से पहले आयोजकों ने मुझे एक लिफाफे में 300 रुपए दिए जो मेरे बस किराए से कहीं ज्यादा थे।

उस रात दिलीप अंकल ने मुझे और लूसियानो को भोजन पर अपने घर आमंत्रित किया। जब मुझे पता चला कि वो छोटे कछुए को अपने पास रखना चाहते हैं तो मैंने उसे उनके पास छोड़ दिया। अगले दिन सुबह एक कन्नड अखबार ने पिछले दिन के कार्यक्रम का ब्यौरा छापा। उस रिर्पोट में मुझे अपनी फोटो देखकर जरूर आश्चर्य हुआ। मेरे लिए उस खुशी को बयां करना मुश्किल है।

कुछ समय बाद मैंने अपनी एक साल की छुट्टी के अनुभवों को *'हिन्दुस्तान टाइम्स'* अखबार के लिए लिखा। फोटोग्राफ्स के साथ मेरा लेख अखबार के *'यूथ पेज'* पर छपा। मेरे माता-पिता ने बताया कि उनके कई मित्रों ने मेरे लेख को पढ़ा और पढ़ाई से एक साल की छुट्टी लेने के साहसिक कदम के लिए उन्हें बधाई दी। यह सब मेरे लिए अपार प्रसन्नता की बात थी। इस लेख को बाद में कई अन्य अखबारों और पत्रिकाओं ने दुबारा छापा। इनमें मलेशिया से निकलने वाली पत्रिका 'द *उटूसन कंज्यूमर*' भी शामिल थी।

बेलगाम के अपने भाषण में, बैंगलोर के स्कूलों की कार्यशालाओं में अपने हरेक लेख में मैंने एक बात पर बल दिया। हरेक छात्र को स्कूल की पढ़ाई खत्म करने के बाद अपने पालकों से कुछ दिनों की छुट्टी मांगनी चाहिए। इस छुट्टी से उन्हें कभी कोई पछतावा नहीं होगा।

इस पुस्तक के अंत में मैं इस बात को दोहराना चाहता हूं कि जून 1995 से जून 1996 के बीच का साल मेरे लिए बहुत अच्छा और अविस्मरणीय वर्ष रहा। इस अवधि में मैं जो चीजें सीखना चाहता था वो तो मैंने सीखीं पर साथ-साथ मैंने अन्य कई महत्वपूर्ण बातें भी सीखीं। आजादी के माहौल में मैं जो कुछ करना

चाहता था वो सब करने में मुझे बहुत आनंद आया। मैं आने वाले भविष्य में भी छुट्टी लेने का इच्छुक हूं और आपसे भी यही अपील करता हूं।

मेरे जीवन का सबसे यादगार साल!

स्कूल से मुक्ति पुस्तक के बारे में

सोलह साल का बालक आए दिन पुस्तक नहीं लिखता है। इस उम्र के बच्चे अक्सर दूसरों द्वारा लिखी पुस्तकें ही पढ़ते हैं। लोग मानते हैं कि इस उम्र के बच्चों के पास अपनी ओर से कुछ विशेष कहने को होता ही नहीं है। और हमारी शिक्षण पद्धति भी इसी बात को सुनिश्चित करती है। ऊंचा इनाम उन्हें ही मिलता है जो तोतों की तरह उत्तरों को रटकर परीक्षा में थूक आते हैं। जो छात्र उत्तर अपनी कल्पना अनुसार, या भिन्न तरीके से लिखते हैं, उन्हें कम अंक देकर दण्डित किया जाता है।

दरअसल, राहुल अल्वारिस की पुस्तक लिखने की कोई तैयारी नहीं थी। माता-पिता के प्रोत्साहन से उसने स्कूली शिक्षा के बाहर कुछ नया सीखने की आजमाईश की। नतीजा यह हुआ कि 'स्कूल से मुक्ति' उसे खुद-ब-खुद ढूंढते हुए आई! अपने साथियों की बजाए उसने हाई-स्कूल के बाद स्कूली शिक्षा को तिलांजलि दी और अपने दिल की आवाज सुनी। सरीसृपों (सांपों इत्यादि) की दीवानगी उसे पुणे के 'सर्प उद्यान' व मामल्लापुरम के 'मगरमच्छ केंद्र' तक ले गई। इसी के साथ उसने मकड़ियों, केंचुओं तथा कछुओं के बारे में भी अथाह जानकारी हासिल की। उसने इरूला जनजाति के लोगों के साथ रहकर उनसे सांप पकड़ने की कला सीखी। कई बार गर्म मिजाज के रेंगने वाले जंतुओं ने उसे काटा भी फिर भी वो इन कष्टप्रद अनुभवों से सुरक्षित बचकर निकला।

'स्कूल से मुक्ति' राहुल की, स्कूल से एक साल दूर रहने की कहानी है। इस दौरान उसके सीखने की क्षमता दिन-दूनी, रात-चौगुनी बढ़ी। इस पुस्तक को लिखकर उसने अपने हम उम्र छात्रों को भारत के रूढ़िबद्ध और उबाऊ स्कूली वातावरण से बाहर निकलने लिए प्रोत्साहित किया है। असली जीवन के तमाम पहलुओं से छात्र बहुत कुछ सीख सकते हैं। स्कूल से बाहर उसने कुछ खोया नहीं, पर बहुत कुछ पाया। उसके माता-पिता ने भी बहुत सीखा। इस कहानी को पढ़ने के बाद आपको भी कुछ ऐसा ही अनुभव होगा।